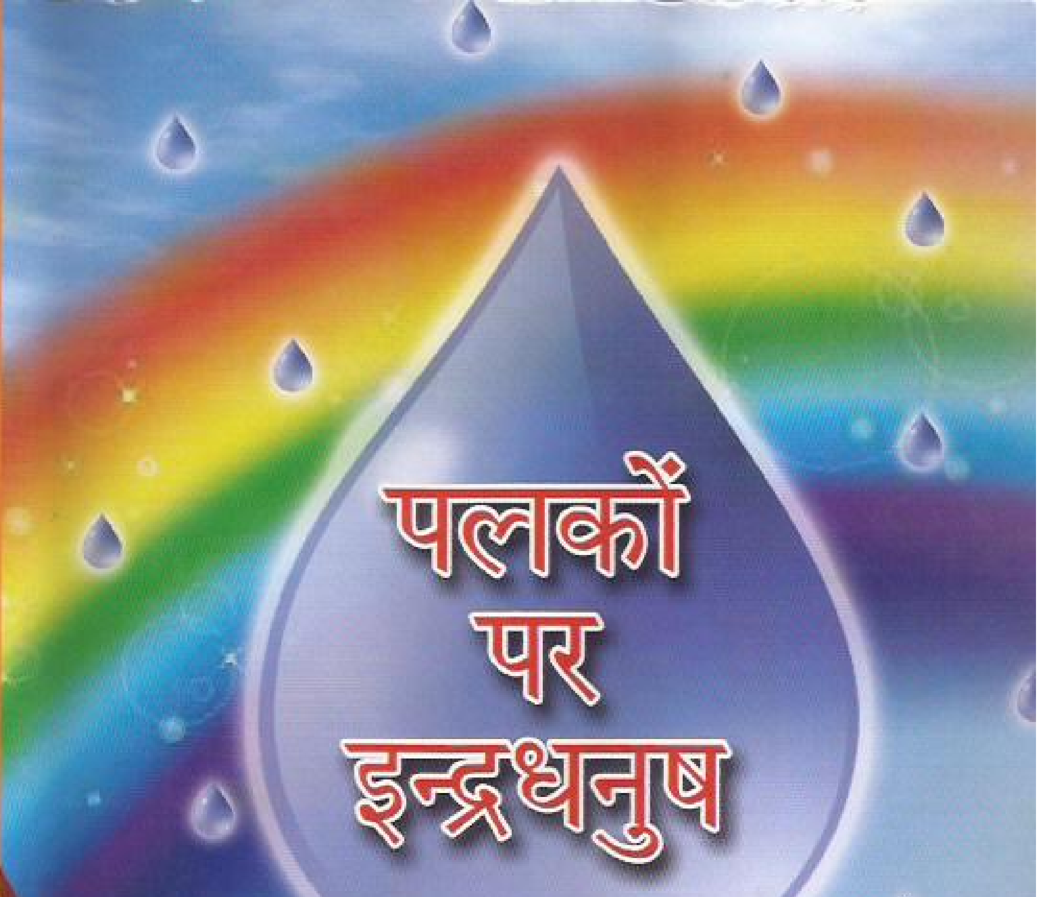

पलकों पर इन्द्रधनुष

डॉ. अरुण प्रकाश अवस्थी

इसी कृति से –

माता में ही संस्कृति का उत्कर्ष छिपा है
माता में ही जीवन का हर हर्ष छिपा है
मां एकाक्षर ओंकार से रंच न कम है
सच मानो माता में भारतवर्ष छिपा है।

•

राम अपनी भक्ति हैं अनुरक्ति हैं आदर्श हैं
राम ही हैं प्रीति यति-गति रति सुमति उत्कर्ष हैं
राम ही पहचान संस्कृति जाह्नवी के देश की
बस चिरन्तन सत्य यह है, राम भारतवर्ष है।

•

आदमी हो, जिदंगी के शूल काटते चलो
जिन्दगी की राह के बबूल छाँटते चलो
घाटियाँ अभाव की समूल पाटते चलो
हो सके तो हर किसी को फूल बाँटते चलो।

•

लोक में साजिश अमावस की न कोई हो सफल
पूर्णिमा की एक दिलकश साज है मेरी ग़ज़ल।

•

प्रश्न नहीं है इस दुनिया में कितना कौन बड़ा है
प्रश्न यही है किस जमीन पर कैसे कौन खड़ा है।

•

दे न पाया विश्व को यदि एक भी आलोक का क्षण
व्यर्थ में संसार का आभार लेकर क्या करूँ मैं।

पलकों पर इन्द्रधनुष

(काव्य-संग्रह)

डॉ० अरुण प्रकाश अवस्थी

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय

कोलकाता

प्रकाशक :
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय
१-सी, मदन मोहन बर्मन स्ट्रीट,
कलकत्ता-७०० ००७
टेलीफैक्स : २२६८-८२१५

●

प्रकाशन तिथि :
अक्षय तृतीया, संवत् २०७०
१२ मई, २०१३ ई.

●

मूल्य : २०० रुपए

●

ISBN No. 978-81-902967-6-2

●

आवरण सज्जा : श्रीजीव अधिकारी

●

मुद्रक :
एसकेज
८, शोभाराम बैशाख स्ट्रीट
कलकत्ता-७०० ००७
मोबाइल : ९८३१४ १३१४१

PALAKON PAR INDRADHANUSH (Collection of Hindi Poems)
by : Dr. Arun Prakash Awasthi
Price Rs. 200/-

समर्पण

जिनमें देश-भक्ति का पावन बहता गंगाजल है
जो हँस-हँस कर सकल भुवन का पीते सदा गरल हैं
जो प्रकाश-व्रत के हमराही, हरते तमस कलुष हैं,
उनको ही सादर अर्पित, 'पलकों पर इन्द्रधनुष' है।

भूमिका ....

'पलकों पर इन्द्रधनुष' सिद्धहस्त कवि एवं लेखक डॉ. अरुण प्रकाश अवस्थी का नवीनतम काव्य संकलन है। इसके पूर्व उनकी विविध विषयों पर कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें ४ काव्य कृतियाँ, २ उपन्यास एवं कुछ सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक निबन्ध-संग्रह प्रमुख हैं। अवस्थीजी ने विविध पत्र-पत्रिकाओं में अनवरत लेखन द्वारा कोलकाता ही नहीं, सारे देश में ख्याति अर्जित की है। विगत कुछ वर्षों में हमारे देश में जिस तेजी से व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय चारित्र्य का ह्रास हुआ है, उसने रचनाकार को भीतर से मथ कर राष्ट्रीय नवजागरण हेतु अपनी माटी के इतिहास-गौरव पर कलम चलाने को प्रेरित किया है। 'पलकों पर इन्द्रधनुष' की रचनाएँ मूलतः इसी भावधारा से प्रेरित हैं, जिन्हें पाँच खंडों : (१) आदिपर्व, (२) राष्ट्रपर्व, (३) आधुनिक पर्व, (४) ग़ज़ल पर्व एवं (५) युगपुरुष पर्व में समाहित किया गया है। भारत के गौरवशाली अतीत का भावपूर्ण चित्रण तथा भारत-भूमि के प्रति अपार श्रद्धाभाव उनकी रचनाओं में बार-बार व्यक्त हुआ है। 'आधुनिक पर्व' की कविता 'तब माटी का इतिहास लिखा' में वे कहते हैं—

मैंने जीवन में हास लिखा, श्रृंगारिक वाग्विलास लिखा,
लेकिन जब माटी चीख पड़ी, तब माटी का इतिहास लिखा।

स्वाधीन भारत में विविध क्षेत्रों में हो रहे अवमूल्यन तथा चारित्रिक अधःपतन से कवि चिन्तित है। भ्रष्टाचार, घूसखोरी तथा देश के तथाकथित भाग्य-विधाताओं की काली करतूतों से आजाद भारत की छवि धूमिल हुई है। तभी तो 'गणतन्त्र दिवस पर' शीर्षक कविता में वह प्रश्न करता है—

कैसे करूँ वन्दना बोलो, मैं गणतन्त्र तुम्हारी।
हुए उपेक्षित हंस, काग-बक पूजा के अधिकारी।।

* * * *

उजड़ गई है पंचवटी, पर मायामृग जीता है,
युग की सीता मारीचों से, अब भी भयभीता है।

परन्तु कवि इससे निराश-हताश नहीं हैं। उसके पास आस्था की ज्योति है, उसी के बल पर परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर समाज को जागृत-आलोकित करने के कवि-कर्म के प्रति वह संकल्पबद्ध है। समाज को आत्मविश्वास से पूरित कर जर्जर श्रृंखलाओं को तोड़ने का आह्वान करता है कवि—

घात के प्रतिघात के फण पर सदा चलता रहूँगा,
किन्तु फिर भी लोक को आलोक से भरता रहूँगा।

'आदि पर्व' में माँ की महिमा पर कवि की भावपूर्ण अभिव्यक्तियाँ अत्यन्त प्रभावी हैं। 'मातृ-शक्ति' शीर्षक इस लम्बी कविता में वह कहता है—

करुणा की रसखान सदा होती है माता,
ममता की पहचान सदा होती है माता,
अपना ही उपमान सदा होती है माता,
धरती पर भगवान् सदा होती है माता।

सचमुच धरती पर ईश्वर की सच्ची प्रतिनिधि तो माता ही होती है। पूरी कविता की कई चतुष्पदियों को बार-बार पढ़ने एवं गुनगुनाने का मन करता है। प्रभु श्रीराम के प्रति कवि की निष्ठा सुविदित है। 'राम-चालीसा' 'रामाष्टक', 'श्री रामजी की आरती' तथा 'राम-श्याम युगल शतक' जैसी रचनाओं के रचनाकार अवस्थी जी की 'राम भारतवर्ष हैं' शीर्षक कविता ध्यातव्य है—

राम अपनी भक्ति हैं, अनुरक्ति हैं, आदर्श हैं,
राम ही हैं प्रीति, मति, गति, रति, सुमति उत्कर्ष हैं।
राम ही पहचान संस्कृति जाह्नवी के देश की,
बस चिरन्तन सत्य यह है, राम भारतवर्ष हैं।। (राष्ट्र पर्व)

'आधुनिक पर्व' की कवितायें बहुचर्चित गोधरा काण्ड के पूर्व-नियोजित पाशवी षड्यन्त्र से आगाह करते हुए प्रारंभ होती हैं, जिसमें अयोध्या से लौटते हुए रामभक्तों को रेलगाड़ी में ही पेट्रोल छिड़क कर जीवित जला दिया गया था। इस घटना की प्रतिक्रिया में घटी घटनाओं की चर्चा तो सर्वत्र होती है पर मूल घटना की सदैव अनदेखी की जाती है। अपने ही देश हिन्दुस्थान में बहुसंख्यक हिन्दू समाज की स्थिति कवि की वाणी में—

अल्पसंख्यक का जुर्म भी, एक स्वाभाविक उन्माद,
बहुसंख्यक का क्रोध भी, दण्डनीय अपराध।

कवि आज के इस अंधकाराच्छादित परिवेश में अपनी ही धरती पर खोए अपने देश की स्थिति पर चिन्तित है। इसी पर्व के एक अन्य गीत में वह कहता है—

दिशा-दिशा तम से बोझिल है, बेच रहे हैं सब अँधियारा,
अपनी ही धरती पर खोया, प्यारा हिन्दुस्थान हमारा।

यद्यपि प्रश्नाकुल भाव से वह कह उठता है— *'कैसे गीत आज मैं गाऊँ'* परन्तु निराश होने की अपेक्षा इस धरती की मिट्टी को माथे से लगा कर वह नया आह्वान करता है—

मातृ-भूमि सूक्तों को फिर से दुहराएँ,
चन्दन सी माटी यह, शीश पर चढ़ाएँ।

इस पर्व की सभी रचनाएँ इसी भावधारा की हैं—

अपनी ही बस्ती में खोया, आज हमारा गाँव,
किसी गली में नहीं दीखती, थोड़ी सी भी छाँव।

हिन्दी ग़ज़लकारों ने ग़ज़लों को एक नया ही तेवर दिया है। ग़ज़ल को समर्पित चौथे पर्व में अवस्थीजी ने भी ग़ज़लों को नई ताजगी एवं भंगिमा प्रदान की है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि का राष्ट्र एवं समाज के प्रति सजग भाव इन ग़ज़लों में भी बार-बार व्यक्त हुआ है—

आ गए हम भटक करके, किन बियावानों में हैं,
आदमी साये से भी अपने, बहुत घबड़ा रहा है।

उनकी ग़ज़ल *'समूचे देश की आवाज'*; *'कालिमा की जीत पर ऐतराज'*; *वतन की अस्मिता पर नाज'* तो है ही, साथ ही वह है—

सर हथेली पर लिए राहे वतन पर जो चलें,
उनके सर पर एक सुन्दर ताज है मेरी ग़ज़ल।
लोक में साजिश अमावस की न हो कोई सफल,
पूर्णिमा का एक दिलकश साज है मेरी ग़ज़ल।

आज के राजनेताओं पर भी कवि की टिप्पणी बेहद गंभीर एवं चेतावनीपूर्ण है—

डाकुओं में नाम जिनका आज तक है चल रहा।
फिर भी चुनकर वही आते, यह परेशानी तो है।

सूचना के अधिकार के अन्तर्गत प्राप्त सूचना से हमारे विधायकों एवं सांसदों के रूप में ऐसे लोगों की उपस्थिति अवस्थीजी की बात की सत्यता प्रमाणित कर देती है। इस परिस्थिति का कारण भी वे अपनी एक ग़ज़ल में स्पष्ट करना नहीं भूलते—

जो भी हैं खुद्दार, मौन सब साधे हैं,
मुखर हुए गद्दार हमारी बस्ती में।

सज्जनों का मौन रहना और दुर्जनों का मुखर और सक्रिय रहना ही अवस्थी की दृष्टि में इस त्रासदी का मूल कारण है। सीमा पर हो रही घुसपैठ पर भी देशभक्तों को चेताते हुए वे कहते हैं—

इस माटी से यारी रख, दिल में वह चिनगारी रख,
जो घुसपैठ करे सीमा में, उनके लिए दुधारी रख।

एक ग़ज़लकार के रूप में स्वयं का परिचय देते हुए अवस्थीजी कहते हैं—

दोस्त मैं संक्षेप में परिचय स्वयं का दे रहा,
राम के इस देश का इतिहास है मेरी ग़ज़ल।

यानी अवस्थीजी की ग़ज़ल प्रेम या मोहब्बत के कसीदे काढ़ने के लिए नहीं लिखी गई है, देश की दशा एवं दिशा का चिन्तन एवं लोक जागरण ही उनकी ग़ज़ल का मूल उद्देश्य है।

पुस्तक का चौथा पर्व 'युगपुरुष पर्व' है। इस पर्व की रचनाओं में उन राष्ट्रभक्तों का अर्चन या तर्पण है जिन्होंने इस देश के धर्म, संस्कृति और समाज-जीवन की गौरवशाली परम्पराओं की रक्षा एवं पुनर्स्थापना हेतु अपने आप को खपा दिया। ये रचनायें विभिन्न अवसरों पर पुस्तकों, स्मारिकाओं अथवा विशेष आयोजनों के लिए लिखी गई हैं जिन्हें इस पर्व में एकत्र कर दिया गया है। इसमें आदि शंकराचार्य, भगवान् परशुराम, तुलसीदास, राणाप्रताप से लेकर आधुनिक युग के डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार, सरदार पटेल, वीर सावरकर, कवीन्द्र रवीन्द्र, स्वामी विवेकानन्द, महाप्राण निराला, डॉ. राममनोहर लोहिया एवं आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री तक को स्मरणांजलि दी गई है। सभी रचनाओं में विशिष्ट व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धाभाव तो है ही— उनके गुणों एवं उपलब्धियों का विवेचन भी है।

भगवान परशुराम को समर्पित ये पंक्तियाँ देखें—

बोल न सकता अब स्वदेश की दीनदशा कितनी विचित्र है।
भ्रष्टाचार और घोटाला अब जन-प्रतिनिधियों का चरित्र है।।
नेता-मेध यज्ञ फिर करदो, हे युगपुरुष, युगीन विजेता।
माँग रहा यह देश परशुधर, तुम सा निस्पृह निश्छल नेता।।

क्रान्तिकारियों के युवराज स्वातन्त्र्य वीर सावरकर के प्रति समर्पित ओजस्वी पंक्तियाँ आकृष्ट करती हैं—

अनुराग राष्ट्र संस्कृति का जब, अनजाने ही मर जाता है।
ऐसे में कोई वीरव्रती सावरकर बन कर आता है।।
जिस ओर तुम्हारी दृष्टि उठी, चल पड़ी जवानी उसी ओर।
राष्ट्रीय भाव का ज्वार उठा, दिख पड़ा न जिसका ओर छोर।।

यह विडम्बना ही है कि ऐसे महानायकों के चरित्र पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाये नहीं जाते। अवस्थीजी जैसे कलमकार ही इस कमी को पूरा करते हैं। मेरा विश्वास है इस पुस्तक की एक-एक पंक्ति पाठकों के हृदय में देशभक्ति की सरिता बहायेगी और निश्चय ही

शुभ रामनवमी, सं. २०७०
१९ अप्रेल, २०१३ ई.

(जुगल किशोर जेथलिया)

प्रकाशकीय ....

साहित्य की विभिन्न विधाओं पर साधिकार लेखन के बावजूद अवस्थीजी की परिचिति एक कवि के रूप में ही है। राष्ट्र की वंदना और अपनी माटी की महिमा की प्रेरक अभिव्यक्तियों के कारण वे प्रखर राष्ट्रीय चेतना के कवि के रूप में परिगणित किए जाते हैं। भारत-पाक युद्ध पर केन्द्रित 'रावी तट', 'महाराणा का पत्र' तथा 'क्रांति का देवता (चंद्रशेखर आजाद)' खण्ड-काव्यों की ओजस्वी रचनाओं ने अवस्थी जी को अखिल भारतीय कीर्ति प्रदान की है। विवेच्य कृति 'पलकों पर इन्द्रधनुष' में यों तो विविधरंगी कविताएँ संकलित की गई हैं परन्तु कृति का मूल स्वर देशानुराग का ही है।

अपने प्रिय देश का भावपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करने वाली ये पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं—

जिसे देख सुरधनु शरमाता/देव-लोक भी शीश झुकाता।
वह धरती का स्वर्ग मनोहर/प्यारा हिन्दुस्तान हमारा।।
रंग-रंग के सुमनों वाला/पहने इन्द्रधनुष की माला।
ममता का संदेश सुनाती/जहाँ अमर संस्कृति की धारा।।

ऐसी पुण्य भूमि की अर्चना का आह्वान करते हुए वह कहता है—

ये अर्चना की भूमि है/ये वन्दना की भूमि है।
ये सर्जना की भूमि है/ये कल्पना की भूमि है।
तुम इसे नमन करो/तुम इसे चमन करो।
राष्ट्र के तमिस्र का/समग्र आचमन करो।

देश की महिमा पर मुग्ध कवि का शब्दों के माध्यम से स्तवन, कीर्तन, आराधन हर भारतीय को गौरवान्वित कर देशभक्ति के पवित्र भाव से आपूरित कर देता है। 'भारत वंदना' शीर्षक लंबे गीत की कुछ पंक्तियाँ—

जहाँ कल्पना धारण करती हो नित नव परिवेश रे
वही हमारी जन्मभूमि है, वही हमारा देश रे
रामायण गीता से पुलकित जिसके पावन ग्राम रे
जिसका बच्चा-बच्चा भाषित होता ज्यों घनश्याम रे
जहाँ सूर तुलसी मीरा सँग कबिरा गाते गीत रे
अभी गूँजता है कानों में जहाँ साम संगीत रे
जिसको रचकर धन्य हो गया कलाकार सर्वेश रे
वही हमारी जन्मभूमि है, वही हमारा देश रे।

डॉ० अरुण प्रकाश अवस्थी को साहित्यिक संस्कार अपनी जन्मभूमि मौरावाँ (उन्नाव) उ०प्र० से प्राप्त हुए। पं० प्रताप नारायण मिश्र, कविसम्राट सनेही, महाप्राण निराला, आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा जैसी अनेक स्वनामधन्य साहित्यिक विभूतियों की जन्म (पैतृक) भूमि होने के कारण इस जनपद की माटी साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत उर्वर है। जन्मभूमि से प्राप्त साहित्यानुराग को कोलकाता के साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश ने न केवल पुष्पित-पल्लवित किया अपितु समुचित दिशा देकर अवस्थी जी को साहित्य-सृजन की ओर प्रवृत्त किया।

१९६२ ई० में अवस्थीजी ने डॉ० रामकुमार त्रिपाठी के साथ मिलकर कलकत्ता में 'ज्योत्स्ना' साहित्यिक संस्था की स्थापना की। इस संस्था के तत्त्वावधान में होने वाली काव्य-गोष्ठियों के माध्यम से अवस्थीजी की कवि-प्रतिभा को पुष्ट आधार प्राप्त हुआ। परवर्ती काल में 'विश्वमित्र' दैनिक से संबद्ध होकर 'काव्य और कला' शीर्षक साप्ताहिक स्तम्भ में काव्य रचनाओं द्वारा तथा उसके कई वर्षों बाद 'सन्मार्ग' दैनिक के 'चकल्लस' स्तंभ में नियमित काव्य-प्रस्तुतियों के माध्यम से अवस्थीजी ने काव्य-प्रेमियों के बीच अपनी पहचान बनाई। इस बीच समाचार पत्रों में साहित्यिक ही नहीं सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं सामयिक विषयों पर सुचिंतित आलेखों द्वारा उन्होंने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया। प्रभावी भाषा, मोहक शैली तथा सुललित छंद योजना के कारण उन्होंने लेखक एवं कवि के रूप में अपनी छाप छोड़ी।

कोलकाता के उस समय के वरिष्ठ साहित्यकारों-पत्रकारों— पं० गुलाब रत्न' वाजपेयी, लोकमान्य-संपादक पं० राम शंकर त्रिपाठी, विश्वमित्र-सम्पादक कृष्णचंद्र अग्रवाल, प्रख्यात गीतकार रुद्रदत्त शुक्ल 'शेखर', ग़ज़लकार राजनारायण शर्मा 'दर्द', वरिष्ठ हिन्दी अध्यापक एवं गीतकार रामबचनलाल श्रीवास्तव, कविवर कन्हैयालाल सेठिया, रामकृष्ण गुप्त 'बन्धु', प्रो० कल्याणमल लोढ़ा, आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री, डॉ० दयानन्द श्रीवास्तव, दैनिक विश्वमित्र के साहित्य संपादक बनारसी दत्त सेवक, प्रख्यात कवि डॉ० चंद्रदेव सिंह, कवि शंभू प्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-राजस्थानी के कवि डॉ. भगवती प्रसाद चौधरी आदि का स्नेह-सान्निध्य अवस्थीजी को सहज सुलभ रहा। कविसम्राट गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' (कानपुर), राष्ट्रकवि पं० सोहनलाल द्विवेदी (बिन्दकी, फतेहपुर), आशुकवि पं० जगमोहन नाथ अवस्थी (लखनऊ), ओजस्वी कवि पं० रामदयाल पाण्डेय (पटना) का शुभाशीर्वाद एवं नैकट्य अवस्थी जी को प्राप्त रहा है।

व्यक्तित्व-कृतित्व की विशिष्टता के कारण स्थानीय साहित्यकारों, पत्रकारों, समाजसेवियों एवं साहित्यानुरागियों का एक बड़ा वर्ग उनकी रचनाओं का प्रशंसक है, जिनमें प्रमुख हैं— डॉ० कृष्ण बिहारी मिश्र, वरिष्ठ कवि पं० छविनाथ मिश्र, कवि नवल,

गीतकार डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र, रंगकर्मी विमल लाठ, पत्रकार गीतेश शर्मा, श्री विश्वम्भर नेवर, श्री राज मिठौलिया, श्री पुष्करलाल केडिया, श्री जुगलकिशोर जैथलिया, एडवोकेट वीरभद्र सिंह, डॉ० माता प्रसाद सिंह, श्री दुर्गादत्त सिंह, श्री लक्ष्मीकान्त तिवारी, श्री गणेश शंकर तिवारी, डॉ० वसुमति डागा, श्रीमती दुर्गा व्यास, डॉ० तारा दूगड़, श्रीमती स्नेहलता वैद आदि।

वरिष्ठों के प्रति श्रद्धाभाव के साथ-साथ कनिष्ठों के प्रति स्नेह-सद्भाव रखने के कारण अवस्थीजी ने अनुज पीढ़ी के कई कवियों को प्रेरित-प्रभावित किया। उनके निकट के कई कवि-मित्र आज समाज में सुप्रतिष्ठित हैं। सर्वश्री योगेन्द्र शुक्ल 'सुमन', अनिल ओझा 'नीरद', जय कुमार रुसवा, रामेश्वर नाथ मिश्र 'अनुरोध', नंदलाल रोशन, जे. चतुर्वेदी 'चिराग', गिरिधर राय, रविप्रताप सिंह, ईश्वर दयाल सिंह, सुरेश पाण्डेय 'संभव' इनमें प्रमुख हैं।

विविध विधाओं (कविता, कहानी, निबंध, उपन्यास, संस्मरण) पर स्तरीय लेखन द्वारा अवस्थीजी ने रचनात्मक सक्रियता के साथ अपने व्यापक अध्ययन को प्रमाणित किया है। अपनी विद्वत्ता एवं वाग्मिता के कारण वे साहित्य-साधकों एवं साहित्यानुरागियों के बीच अत्यंत समादृत हैं। कुमारसभा पुस्तकालय से डॉ० अरुण प्रकाश अवस्थी का आत्मीय सम्पर्क रहा है। पुस्तकालय ने २००२ ई० में उनकी कृति 'राम-श्याम युगल शतक' प्रकाशित की थी। उस कृति के दोहों को व्यापक सराहना प्राप्त हुई है।

पुस्तकालय के मार्गदर्शक श्री जुगलकिशोर जैथलिया तथा मंत्री श्री महावीर बजाज के आग्रह को स्वीकार कर अवस्थी जी ने अपनी कृति 'पलकों पर इन्द्रधनुष' प्रकाशित करने की अनुमति हमें प्रदान की— इस हेतु हम उनके आभारी हैं। इस काव्य-संग्रह में उनकी प्राचीन-नवीन कई रचनाएँ समाहित हैं। आदि-पर्व, राष्ट्र-पर्व, आधुनिक-पर्व, ग़ज़ल-पर्व, युगपुरुष-पर्व— इन पाँच खण्डों में विभाजित इस काव्य-संकलन की इन्द्रधनुषी आभा काव्य-प्रेमियों को आह्लादित करेगी — ऐसा हमारा विश्वास है। पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित कृतियों की शृंखला में यह कृति भी समादृत होगी इस आकांक्षा के साथ—

प्रेमशङ्कर त्रिपाठी

वर्ष प्रतिपदा, सं. २०७०
११ अप्रैल, २०१३ ई.

(डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी)
अध्यक्ष
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय

प्राक्कथन ....

संग्रह का शीर्षक 'पलकों पर इन्द्रधनुष' क्यों? घटना विगत १५ अगस्त की है। मैं एक स्वतंत्रता दिवस समारोह में गया था। घनघोर वर्षा हो रही थी ! मैं भीग तो गया ही था, कुछ जल-कण मेरी पलकों पर भी पड़ गए थे। समारोह-स्थल पर पहुँचा तो सभागार में प्रकाश का बिम्ब मेरी पलकों पर पड़ा। मुझे लगा कि पलकों पर ही इन्द्रधनुष उतर आया है। वह छटा अत्यन्त रुचिकर लगी। उसी इन्द्रधनुष की आनन्द-आभा में अपने महान राष्ट्र भारत का मानचित्र उभर आया। मुझे लगा कि वस्तुतः राष्ट्र का स्वरूप इन्द्रधनुषी है। क्यों न संग्रह का यही नाम दिया जाए ? नामकरण की समस्या का समाधान स्वतः ही मिल गया।

सचमुच यह देश इन्द्रधनुषी शोभा का एक सजीव प्रतीक है। जिस प्रकार इन्द्रधनुष में सात वर्ण होते हैं उसी प्रकार यह महान राष्ट्र भी विविध वर्णों वाला है। पर आश्चर्य तो यह है कि इस विविधता में भी एकत्व का भाव है। प्रथम तो इसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। आप इसे आर्यावर्त्त, अजनाभ खण्ड, भारत, हिन्दुस्थान या इण्डिया कहें, बोध केवल इस महान देश का ही होता है। विश्व के किस देश के हैं इतने सम्बोधन ?

सम्राट दुष्यन्त के पुत्र महाप्रतापी भरत के नाम पर इसका नाम भारतवर्ष पड़ा ! भारत— जो प्रभा की साधना में रत हो ! जैसे सूर्य के प्रकाश से सौरमण्डल के सभी ग्रह प्रकाशमान होते हैं, वैसे ही इस प्रभा-रत देश से यह विश्व प्रकाशित हुआ है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही कहा है-

जब थे दिगम्बर रूप में सब जंगलों में घूमते,
प्रासाद तब इस देश के थे चन्द्रमा को चूमते।
संसार को पहले हमीं ने ज्ञान शिक्षा दान की,
आचार की, व्यवहार की, व्यापार की विज्ञान की।

प्रकृति-सुन्दरी ने इसे बड़े प्यार से सँवार कर इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व दिया है। विश्व का सर्वोच्च नगाधिराज हिमालय जिसका मुकुट, विश्व की एक मात्र देव-सरिता जिसका कंठहार, विन्ध्यगिरि जिसकी कटि मेखला, यमुना-ब्रह्मपुत्र-नर्मदा-कृष्णा-कावेरी आदि से स्नात जिसका कलेवर, रत्नाकर अहर्निश करता पद-प्रक्षालन एवं ऋषियों की पवित्र साधना स्थली के आध्यात्मिक प्रतीक महान तीर्थ– जीवन के चार पुरुषार्थों का वरदान लुटा रहे हैं। जिसकी देवभाषा संस्कृत है, उस देवधरा पर देवता क्या, स्वयं निखिल ब्रह्माण्ड नायक अवतरित होते हैं।

कितनी बोलियाँ और भाषाएँ, कितने धर्म एवं सम्प्रदाय, कितने देवी-देवता और हर देवी-देवता के सहस्त्रों नाम, भिन्न-भिन्न आस्थाएँ एवं विचारधाराएँ, कहाँ तक गणना की जाय। आस्तिकता की पराकाष्ठा तो नास्तिकता की हद *'यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्'* इतनी धाराएँ। कहीं टकराव नहीं। यहाँ का इतिहास एवं भूगोल सभी अद्‌भुत है पर है चिर चैतन्य। तभी तो हम इतने भीषण प्रहारों के बावजूद जीवित हैं और कल भी जीवित रहेंगे। ठीक ही कहा गया है–

यूनान मिस्त्र रोमां सब मिट गए जहाँ से,
अब भी मगर है बाकी नामो निशां हमारा।

यह सब इसकी हवा में व्याप्त चेतना का प्रभाव है। ऋग्वेद के अनुसार हमारे आप्त ऋषियों ने यही चैतन्य मंत्र गुंजरित किया था–

उठो चेतन स्वरूप तुम बनो, वरो नूतन संकल्प उछाह।
निरंतर चलना तुमको उधर, जिधर है उदयाचल की राह।।

यह चैतन्य-मंत्र यहाँ के मानवों में ही नहीं यहाँ के पर्वतों, नदियों, वन, वृक्षों एवं पशु-पक्षियों में भी व्याप्त है। इसी कारण यहाँ के पर्वत, नदियाँ, वन, पशुपक्षी आदि बोलते हैं ! है भला संसार में कोई ऐसा देश जहाँ की प्रकृति बोलती हो ! यहाँ की युद्ध-भूमि में भी इतना लम्बा उपदेश दिया गया कि वह एक महान ग्रंथ (गीता) बन गया। हमने सर्वदा धर्म-रक्षार्थ युद्ध लड़े! राजतंत्र से लोकतंत्र की कल्पना हमारी मौलिक कल्पना है। विश्व का प्रथम गणतंत्र अग्रोहा (महाराज अग्रसेन) एवं तदनन्तर बैशाली इसी इन्द्रधनुषी देश की ही शोभा हैं।

सचमुच यहाँ की भूमि रत्नगर्भा है दर्शनीया है, प्रणम्या है। तभी तो गर्व के साथ हम कहते हैं– *'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'*। अपने देव-दुर्लभ गुणों यथा सहनशीलता, अतिथिभाव एवं विश्वबन्धुत्व के कारण हम महानाश के भी गर्त में गिरे। हमें अपने देश के इतिहास के साथ अपनी अजेयता पर भी गर्व है ! आज आवश्यकता है कि

हम अपने विगत गौरव पर ही आत्म-मुग्धता का वरण न करें, वरन् उन लम्हों को भी न भूलें जिसके कारण हम पराभूत होते रहे हैं। अतीत का कीर्ति-गान छोड़ें और उनकी ठोस आधार शिला पर वर्तमान के निर्माण में जुट जाएँ।

इस इन्द्रधनुषी छविवाले भारत को अपनी पलकों पर बिठाएँ। प्रस्तुत काव्य संग्रह इन्हीं भावनाओं के साथ भावी पीढ़ी को सोल्लास समर्पित है। इस देश की इन्द्रधनुषी छटा मेरी पलकों पर सर्वदा शोभित रहे ! मैंने ये विचार इसीलिए प्रस्तुत किए ताकि इस संग्रह के सृजन का उद्देश्य एवं शीर्षक की सार्थकता प्रमाणित हो। अब जहाँ तक कविता के उद्देश्य की बात है, मेरा दृढ़ विश्वास है कि काव्य सृजन में कोई न कोई संदेश अवश्य होना चाहिए। उसे अपनी शाश्वत परम्पराओं से सम्पृक्त होना चाहिए। कविता मनुष्य के लिए है और जो काव्य मानव को मानव नहीं बना सकता वह केवल शब्दजाल होता है। वर्तमान के धूर्त राजनीतिज्ञों ने जिस प्रकार आदमी को कई टुकड़ों में बाँट दिया है, उसी प्रकार जलसावादियों ने कविता को भी विविध नामों, यथा नई कविता, अकविता, गीत, प्रगीत, स्वगीत, अगीत आदि में बाँट दिया है। कविता किसी रूप में हो उसमें कविता के गुण व उद्देश्य होने चाहिए।

'राष्ट्र-पर्व' की कई रचनाएँ सुधी साहित्यसेवी एवं प्रबुद्ध राष्ट्र-चिंतक श्रद्धेय श्री जुगल किशोर जैथलिया की सत्प्रेरणा एवं आग्रहवश लिखी गई हैं। अतः 'राष्ट्र-पर्व' उन्हीं को सादर-सोल्लास समर्पित करते हुए आंतरिक गौरव की अनुभूति हो रही है।

राष्ट्रीय चेतना की मेरी अनेक कविताएँ इस संग्रह में समाहित नहीं की जा सकी हैं जिनमें प्रमुख हैं अथर्ववेद के मातृभूमि सूक्त का अनुवाद और दैनिक विश्वमित्र के १५ अगस्त एवं २६ जनवरी को प्रकाशित अंकों में लगभग २ सहस्र पंक्तियों की दस लम्बी कविताएँ। अगर महानगर की सुप्रसिद्ध संस्था श्रीबड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय इस संग्रह को प्रकाशित न करती और मेरे निकटतम सहयोगी डॉ० प्रेमशंकर त्रिपाठी निरंतर इन कविताओं को संगृहीत करने का प्रबल आग्रह न करते तो कृति प्रकाश में न आ पाती। मेरे अभिन्न कवि मित्र श्री गिरिधर राय ने जिस लगन से इन कविताओं को संगृहीत कर प्रेस कापी तैयार की, वह अभिनंदनीय है। सुरुचिपूर्ण प्रकाशन हेतु कुमारसभा पुस्तकालय के मंत्री श्री महावीर बजाज का परिश्रम भी अविस्मरणीय है।

अरुण प्रकाश अवस्थी

(डॉ. अरुण प्रकाश अवस्थी)

हनुमान जयंती, संवत् २०७०

२५ अप्रैल, २०१३ ई.

अनुक्रम

आदि-पर्व — पेज नं०

वाणी वंदना	३
आभार लेकर क्या करूँ	४
शरद सुषमा	५
गणतंत्र दिवस पर	७
ज्वार नहीं अब तो भाटा है	९
पाठशाला प्रकृति की	११
दीपक मेरा तन-मन	१३
कवि का सौदा	१५
पगडण्डी	१७
मातृ-शक्ति	१९
कृत्रिम संबोधन	२२
शिव संकल्प	२४
अडिग विश्वास	२६
पलास	२७
कवि का संकल्प	२८
मैं उषा बनकर जगाने आ रहा हूँ	३०
दीप सी सिहर-सिहर	३२
कौन तुम	३४

राष्ट्र-पर्व

भारती से	३७
कहाँ गया वह तोहफा	३८
उठो गरुड़ सीखो	४०
उन्हें प्रणाम आज है	४२

पेज नं०

विजया दशमी	४४
जाने किस रजनी में खोया	४६
झिलमिल कर दीप जले	४८
गाण्डीव शिथिल जब पड़ जाता	४९
राम भारतवर्ष है	५०
गांधी का आत्म-क्रन्दन	५१
और मृत्यु पथ पर बढ़ने की...	५२
अनोखा प्यारा राजस्थान	५४
जनतंत्र कह रहा आज	५६
दिवाली	५८
कविता की पहचान	५९
यह निष्ठुर परिवर्तन	६१
विपिन बन्धुओं के प्रति	६५
प्यारा हिन्दुस्तान हमारा	६७
देश बेचनेवाले इन	६९
शत-शत दीप जले	७२
प्रकाश की क्यारियाँ	७३
सर्वव्यापक राम	७४
भारत-वन्दना	७५

आधुनिक-पर्व

गोधरा : कुछ कविताएँ	७९
एक गुमशुदा गाँव	८४
तब माटी का इतिहास -	८६

	पेज नं०
कर दें हम सीप के हवाले	८७
अन्तर ग्रंथि खोलो	८८
स्वप्न	८९
प्रश्न स्वयं से	९१
अपना तो उलटा सरगम है	९२
गांधी बाबा के ये बंदर	९३
नवगीत	९५
धूल की परत	९७
रूपायित धूप	९८
कृष्ण का वंशीवादन	९९
जिज्ञासा	१००
सम्भवामि युगे-युगे	१०२
अपने कवि से	१०४
अपनी पहचान	१०५
जीवन की राह में	१०७
कैसे गीत आज मैं गाऊँ	१०९
लो आई वर्षा रानी	१११

ग़ज़ल-पर्व

दरिया : तेजाब का	११५
कहाँ जा रहे हैं लोग	११६
मेरी ग़ज़ल	११७
ग़ज़ल	११८
ऐसा ताना-बाना कर	११९
हम क्या न गँवारा करते हैं	१२०
ग़ज़ल	१२१
ग़ज़ल	१२२
	पेज नं०
फूल भी हैं खार हमें	१२३
ग़ज़ल	१२४
ग़ज़ल	१२५
ग़ज़ल	१२६
यह परेशानी तो है	१२७
ग़ज़ल	१२८
मेरी ग़ज़ल	१२९
ग़ज़ल	१३०
ग़ज़ल	१३१
दिल में वह चिंगारी रख	१३२

युगपुरुष-पर्व

भगवान् शंकराचार्य के प्रति	१३५
भगवान् परसुराम का आह्वान	१३७
तुलसी के प्रति	१३९
अजातशत्रु केशव	१४१
अद्भुत संगम राणाप्रताप	१४३
सरदार बल्लभ भाई पटेल के प्रति	१४५
राष्ट्रव्रती वीर सावरकर	१४७
कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति	१४९
स्वातंत्र्य वीर सावरकर के प्रति	१५२
डॉ० राममनोहर लोहिया के प्रति	१५४
निराला का निराला-दर्शन	१५६
आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री के प्रति	१५८
स्वामी विवेकानन्द के प्रति	१५९

★ ★ ★

आदि - पर्व

मैं आश्वासनों की सीढ़ियाँ नहीं गढ़ता
कारण....
मुझे ज्ञात है कि जो सीढ़ियों से फिसलता है
वह कभी नहीं सँभलता है।
अतः मेरे सृजन के समीप आओ
वह तुम्हें माँ की भाँति गोद में उठा लेगा
और तुम्हें लक्ष्य की ओर निरापद पहुँचा देगा।

वाणी - वंदना

आओ ज्योति चरण धर
नृत्य चपल करती विद्युत सी युग के उर शतदल पर
खोल गीत के युग स्वर।

कुण्ठा मिटे, सुकवि की
श्रद्धा औ' विश्वास रुपहले झाँके ले द्युति रवि की
मिले दृष्टि चिर छवि की।

नए अर्थ स्वर पाएँ
चीर कुहासों की सीमाएं पावक पर फैलाएं
गीत प्रभा का गाएँ।

उगे नवल युग तारा
शत-शत स्वर्ण शरों से फूटे क्रान्त प्रभा की धारा
टूटे तम की कारा।

यह अर्पण की वेला
निविड़ निशा, नीरव नीराजन कवि का हंस अकेला
हो भावों का मेला। ●

आभार लेकर क्या करूँ....

दे न पाया विश्व को यदि एक भी आलोक का क्षण,
व्यर्थ में संसार का आभार लेकर क्या करूँ मैं।

आदि पीड़ा की जलन ले आज तक चलता रहा हूँ,
रोशनी के ही लिये मैं तिमिर में जलता रहा हूँ।
एक तिनके के लिये भी उम्र भर गलता रहा हूँ,
पर लगा जैसे ज़गत को आज तक छलता रहा हूँ।
एक हाहाकार माटी का बसा है जन्म से ही,
सिन्धु का अब और हाहाकार लेकर क्या करूँ मैं।।

जल रहा हूँ क्योंकि जलना आदमी का धर्म ही है,
चल रहा हूँ क्योंकि चलना आदमी का कर्म ही है।
पी रहा हूँ गरल तो कोई नहीं अहसान करता,
क्योंकि विष का पान करना आदमी का मर्म ही है।
है अधूरा व्रत, न पूरा कर सका हूँ प्रण अभी,
तो धन्यवादों का वृथा गुरु भार लेकर क्या करूँ मैं।।

आदमी हूँ आदमी से प्यार करना चाहता हूँ,
आदमी का गीत से श्रृंगार करना चाहता हूँ।
सामने हहरा रहा जो कालिमा का सिन्धु गहरा,
आदमी के लिये ही अब पार करना चाहता हूँ।
शूल दामन में लपेटे आदमी की राह के, तो—
फिर किसी के फूल का उपहार लेकर क्या करूँ मैं।।

हीन हो सकते यहाँ मधुमास के उपहार सारे,
हीन हो सकते कुबेरों के विभव भण्डार सारे।
पर तुम्हारा आदमी छोटा न हो सकता कभी भी,
हो भले कोई बड़ा कवि विश्व में कवि से तुम्हारे।
इसलिये मैं आदमी का आदमीपन माँगता हूँ,
व्यर्थ आडम्बरों का अम्बार लेकर क्या करूँ मैं।। ●

शरद सुषमा

हो गया शेष पावस प्रमोद
घन शून्य गगन की नील गोद
इन्दीवर शत-शत नयन खोल
देखते विपुल वैभव विनोद

लोभी मिलिन्द उर आग लिए कलिकालिंगन को मचल उठे
यह किस अनन्त का इन्द्रजाल क्षितिजों के मन हो विकल उठे

उड़ रहे गगन में फहर-फहर
केतन से श्वेतविरल जलधर
शुभ्रोत्तरीय से लहर-लहर
अम्बर में मादक नर्तन कर

है यदा-कदा झरते झर-झर पर्वत प्रदेश में अव निर्झर
रजताभ लोरियाँ गा-गाकर क्रीड़ा करते स्वच्छन्द विचर

नभ में, सर में, सरिताओं में
शशि स्वर्ण तरी सा रहा डोल
भू देख रही यह वरुण केलि
कुमुदावलियों के नयन खोल

यह मिट्टी का संसार आज चाँदी के वसन लपेटे है
या क्षीर सिन्धु शत फेनोज्ज्वल सुषमाएँ आज समेटे है

मधुरात्रि माधुरी है मधु है
शशि की मधुमय मधुशाला है
माधुरी लताओं में लिपटी
मादक धरती मधुबाला है

ऐसे में कैसे धीर धरूँ संयम शीशे सा चटक रहा
अपनी यामिनी सजाने को मेरा चकोर मन भटक रहा

अब चलो क्षितिज के पार प्रिये
शारदा जहाँ मुसकाती हो
उर में दूधिया ज्वार लेकर
वह नभ गंगा लहराती हो

ले हीरक दीप तारिकाएँ वर वंदनवार सजाती हों
सोलहों कलाएँ निशिपति की किरणों की बीन वजाती हों

है वही तुहिन सा पिघल रहा
चाँदी का पारावार प्रिये
मालती, मल्लिका का सौरभ
उड़ता दिगन्त के पार प्रिये

वह रजत प्रसारों का निर्झर वह प्रगतिपुरुष का हासमुखर
यह शारदीय शोभा सागर शारदे समर्पित है सादर। ●

गणतंत्र दिवस पर

कैसे करूँ वंदना, बोलो मैं गणतंत्र तुम्हारी।
हुए उपेक्षित हंस, काग-बक पूजा के अधिकारी।।

अंधकार में अब प्रकाश की नहीं साधना होती,
आज भारती शोणित के आंसु भर-भर कर रोती,
भ्रष्टाचार, घूसखोरी का कालकूट है फैला,
जन-गण भाग्य-विधायक करते माँ का आँचल मैला
कौन करे विषपान कहाँ अब शंकर सा व्रतधारी।

चारों ओर भेड़ियों गिद्धों श्वानों के हैं मेले
उस जंगल में मात्र आदमी ही पड़ गया अकेले
किसे आदमी कहते हैं—यह शब्द कोश में मिलता
रावण बार-बार सीता को साधु-वेश में छलता
असली चेहरे कहाँ, सभी हैं यहाँ मुखौटाधारी।

राष्ट्र अस्मिता की होती है सरेआम नीलामी
राणा, शिवा त्यांज्य, गद्दारों को मिल रही सलामी
स्वयं परीक्षित बन हम तक्षक घर में पाल रहे हैं
और कलंकित नगपति का कर उन्नत भाल रहे हैं
लगता महानाश की करता है भारत तैयारी।

कहीं नहीं आशा की अब है एक किरण दिखलाती
राष्ट्र-अस्मिता पीट रही है खोल-खोल कर छाती
उजड़ गई है पंचवटी, पर मायामृग जीता है
युग की सीता मारीचों से अब भी भय-भीता है
बन कर क्लीव भीष्म अर्जुन ने क्यों ओढ़ी लाचारी।

बनो राम का बाण, शम्भु का शूल, धनंजय-धनुष देश के वीरों
परसुराम का काल कराल कुठार बनो रणधीरों
वीर शिवा की खड्ग, व्रती राणा प्रताप का भाला
भारत माता को पहना दो अरि मुण्डों की माला
तब होगा यह राष्ट्र सुरक्षित, यह कामना हमारी।

जब सीमाएँ अग्निल लक्ष्मण-रेखा सदृश बनेंगी
जब दुश्मन की छाती पर संगीनें तीक्ष्ण तनेंगी
जब यह देश विजय की गीता घूम-घूम बाचेगा
और हिमालय-प्रांगण में शिव प्रलय-नृत्य नाचेगा
तभी करूँगा मुक्त-भाव से मैं वंदना तुम्हारी। ●

ज्वार नहीं अब तो भाटा है

किसी चील सी मँडराती है महाशून्य में आज जिन्दगी
राज़ ज़िन्दगी का क्या होता खो बैठी यह राज़ जिन्दगी
गाँव हो गया जंगल-जंगल न्यायाधीश समय भी चुप है
अब तो कुछ पहचान न पाती अपनी ही आवाज जिन्दगी
अक्षांशों पर शेष रहा अब धुआँ धूल धक्कड़ अँधियारा
भीड़ भरे इस महानगर में सन्नाटा ही सन्नाटा है।।

बाहर से कुछ पता न चलता भीतर कितनी कंगाली है
सजी हुई सबके हाथों में नकली फूलों की थाली है
इतनी भीड़ हुई मुर्दों की जगह न कहीं पैर रखने की
पर अंतर से ऐसा लगता जैसे सब खाली-खाली है
अब तो भाषा की नीयत पर अपने को संदेह हो रहा
जिसने अदब आदमी दोनों को ही टुकड़ों में बाँटा है।।

क्रूर थपेड़ों में आँधी के वर्षों तक कितना भरमाया
नदी दर नदी भटका लेकिन लौट पुराने दर पर आया
मन अभिशप्त यज्ञ बन बैठा इसका कारण जान न पाता
मित्रों की तो दूर, स्वयं को दर्पण में पहचान न पाया
कितने ही भूकम्प छिपे हैं कितना हाहाकार समाया
आहें सर्द यही लगता है जैसे विषधर ने काटा है।।

लूट रहे आभीर काव्य की ब्रज-बनिताओं को बेखटके
और पार्थ के बाण अचानक जाने क्यों लक्ष्यों से भटके
रक्षा कवच पुराने जर्जर शब्दों का तूणीर रिक्त सा
लगता यों कुछ छूट गया सा या कि अर्थ अम्बर में अटके
नहीं मूल प्रति कहीं दीखती फाइल में केवल प्रतिलिपियाँ
जीवन वह व्यापार जहाँ पर होता घाटे पर घाटा है।।

सच मानो उस दिव्यलोक के ईश्वर से मैं कभी न डरता
पर इस धरती के मनुष्य से जान न पाता कितना डरता
शब्द-कोश में आज आदमी की परिभाषा केवल मिलती
कितना खुश होता है मानव जब उसका मानवपन मरता
सकल मान्यताएँ जो गर्हित मेरे आंगन में आ बैठीं
जबकि आदमीपन को अपने, कई बार कितना डाँटा है।। ●

पाठशाला प्रकृति की

पहाड़

जव भी मैं अपने एकाकीपन के साथ
किसी एकान्त में बैठता हूँ
तव मैं खामोश पहाड़ों से वात करता हूँ
और उनके पवित्र मौन में
जीवन की ऊँचाइयों को
छूने की कोशिश करता हूँ
मुस्कराने लगता है मेरा आत्म विश्वास
और मैं वन जाता हूँ महिमामय कैलास।

समुद्र

जीवन के कोलाहल से दूर
जब भी मैं किसी अर्थ भरी
सागर वेला पर जाता हूँ
चुपचाप अपने आप
जीवन की अतल गहराइयों में
अचानक उतर जाता हूँ।

नदी

मेरा अन्तर जब छोड़ देता है
आगे बढ़ने की उद्दाम अभिलाषा
और मैं बन जाता हूँ
जड़ता की चट्टानी परिभाषा
तब मैं अपने को किसी बावली
नदी के हवाले कर देता हूँ
और मुझे मिल जाती है
निरंतर गतिशीलता की भाषा।

आकाश

जब भी कुछ तंग खयालात
मुझे तंग करते हैं
और मेरे अन्दर पूरी दुनिया को नहीं
केवल मुझे बन्द करते हैं
तब मैं अपने आप को आकाश बना देता हूँ
और पूरे जगत को
अपनी नीलिमा से ढक लेता हूँ। ●

दीपक मेरा तन-मन

उच्छरित सिन्धु-सा प्रखर भानु-सा खर-तर मैं
लिख रहा काल की छाती पर नित पुण्यश्लोक
जाने कितने रवि-शशियों के आसन ये दृग
मेरे गीतों में समा गए बहु दिवालोक

मेरे लोचन हैं स्रोत जाह्नवी-यमुना के
उथले लगते हैं मित्र! महासागर सारे
हो धुआंधार वज्र-प्रहार चाहे झंझा
मेरी गति के युग-गरुड़ कहाँ कब हैं हारे

मेरे अन्तर का उत्स प्रभा की धारा सा
आकुल है युग का कलुष निगलने को प्रतिपल
अभिषेक मनुज का करने को मैं वचनबद्ध
इसलिए निरंतर प्रवहमान वरुणा छल-छल

गंगा जल से ये छन्द गोमुखी सदृश सृजन
मंगल से पूरित उर्मि-उर्मि शुभ दुग्धोज्ज्वल
अधरों पर मेरे अमृतमयी रसवंती चिर
पी लिया कलुष युग का सुकण्ठ में हालाहल

जो रहे कूल पर केवल लहरों को गिनते
उतरे वे उर की झील बहुत गहरी है
पलकों में सावन-भादों का गीलापन
पर अन्तर-दाघ-निदाघ तप्त दोपहरी है

मैं एक विरोधाभास स्वयं भाषित होता
हूँ चिर विदग्ध वज्रादपि मस्तक गर्वोन्नत
पर अंतर में कलिका शिरीष की मुसकाती
आदमी बसा है वहीं हुआ हूँ अवतक नत

मेरी कविता केवल मानव को है अर्पित
मानव पर ही अपना हर सृजन चढ़ाया है
मन का, जग का हर अंधकार हरने को नित
मैंने प्रदीप सा खुद को नित्य जलाया है। ●

कवि का सौदा

अपनी आँसू की धार मुझे दे जाओ,
मैं उसे बना मुस्कान तुम्हें दे दूँगा।

मैं प्रलयंकर विषपायी का अवतारी,
युग-युग से मेरे अधर गरल के प्यासे।
अक्षर-अक्षर है सिंचित आत्म विभा से,
सौरभ से सनी हुई मेरी हैं उच्छ्वासें।
इसलिए मुझे जीवन का विष दे जाओ,
उसको कर अमृत समान तुम्हें दे दूँगा।।

वैभव के ऊँचे राजमहल ले जाओ,
मुझको कुटिया से प्यार बहुत है साथी।
मैंने पलकों से जग का पंथ बुहारा,
हर शूल फूल से कोमल मुझको साथी।
इसलिए शूल अपने मुझको दे जाओ,
मैं फूलों का वरदान तुम्हें दे दूँगा।।

तुम ले लो पूनम मुझे अमा दे जाओ,
हर तम में मुझको ज्योति जलाना आता।
जिस ओर देखता दृष्टि उठा मैं यों ही,
सूखे जीवन में हरसिंगार खिल जाता।
इसलिए मुझे अपने पतझड़ दे जाओ
मैं वासन्ती-अवदान तुम्हें दे दूँगा।।

जीवन में मैंने हार नहीं देखी है
हर पग पर विजय पिन्हाती है जयमाला
केवल मेरे संस्पर्श मात्र से साथी
शीतल हिम सी हो जाती है हर ज्वाला।
इसलिए मुझे अपनी ज्वालाएँ दे दो,
मैं उन्हें बना हिमवान तुम्हें दे दूँगा।।

इस धरती के नैराश्य और क्रन्दन को,
अपने घर में मैं नित्य बुलाया करता।
बदले में जग के सूखे से आँगन में,
आनन्द और आशा बरसाया करता।
इसलिए विश्व का हाहाकार मुझे दो,
मैं उसे बना कर गान तुम्हें दे दूँगा।। ●

पगडण्डी

दूर जगत के कोलाहल से
चिर उपेक्षिता पड़ी हुई हूँ
स्वावलम्ब की अमिट छाप सी मनु की थाती।
युग-युग से मनु के पुत्रों को
गन्तव्यों तक पहुँचा कर के
मूक दर्शिका थी कहलाती।
अब भी भूले पथिकजनों को
करती रहती मौन इशारे।
किन्तु
अधोगति मानव की लख
मौन पड़ी रहती मन मारे।
फिर भी मैं सन्देश सुनाती
स्वावलम्ब का, धरा धर्म का
जैसा मैंने सदा बिखेरा
बस इतना ही परिचय मेरा
सड़क नहीं मैं पगडण्डी हूँ।।

ओ कृतघ्न कृत्रिमता के इस मोहजाल से लिपटे मानव
याद करो अपना अतीत
अपना भोलापन
और आज के युग का यह यांत्रिक जीवन
तूने कर निर्माण लिया है

उन मार्गो का
जो मानवता की छाती पर
करते यांत्रिक ताण्डव नर्तन
अब धरती से मनुज शक्ति का हुआ विसर्जन
भूल चुका है तू मानवपन
भूल चुका मुझ-सी चिर संगिनि
यद्यपि मेरा मनु पुत्रों से अब भी है सम्बन्ध घनेरा
बस इतना ही परिचय मेरा
सड़क नहीं, मैं पगडण्डी हूँ।।

तू कहता इतिहास उसे
जो मौन हो गया
तो मेरे कण मौन कह रहे
तुझ से ही ओ मनु के वंशज
मैंने ही देखा है
तेरा वह भोला अतीत
जब मेरे ऊपर से चल कर
आया था युग का महा सुकवि
गाया था जिसने प्रथम गीत
किन्तु न इतने पर भी माँगा मैंने मान मनुज से अब तक
अरे मान का भूखा मानव कैसे मान किसी को देगा
किन्तु सँजोए हूँ अभिलाषा एक हृदय में।
जैसे प्रथम सान्ध्य का तारा
दूर क्षितिज के पास निलय में।
कब होगा मानवता की पगडण्डी का
और हमारा मिलन प्रीति के चौराहे पर
कब होगा वह स्वर्ण सवेरा
बस इतना ही परिचय मेरा
सड़क नहीं मैं पगडण्डी हूँ।। ●

मातृ-शक्ति

करुणा की रसखान सदा होती है माता
ममता की पहचान सदा होती है माता
अपना ही उपमान सदा होती है माता
धरती पर भगवान सदा होती है माता

वात्सल्य की शान सदा होती है माता
हर शिशु का अरमान सदा होती है माता
पावन गंग समान सदा होती है माता
नगपति सदृश महान सदा होती है माता

माता में ही संस्कृति का उत्कर्ष छिपा है
माता में ही जीवन का हर हर्ष छिपा है
माँ एकाक्षर ओंकार से रंच न कम है
सच मानो माता में भारतवर्ष छिपा है

माता बनकर विष्णु सृष्टि का पालन करती
माँ शिव की प्रतिमूर्ति शिवम् से सृष्टि सँवरती
मातृ शक्ति का तीर्थराज पावन संगम है
सृजन सृष्टि का बनकर ब्रह्मा माँ ही करती

माँ ही लक्ष्मी देवी सकल विभव की रानी
माँ ही प्रज्ञा माँ ही है वाणी कल्याणी
तीनों शक्ति स्वरूपा माँ में विम्बित होती
माँ ही अन्नपूर्णा दुर्गा देवि शिवानी।

वेद, उपनिषद रोम-रोम से माँ के भाषित
सकल ज्ञान-विज्ञान स्वयं माँ से उद्‌भाषित
जो भी है चौदहों भुवन में माँ के आश्रित
माँ कहते ही सकल अशुभ होते निष्कासित

माँ ही राधा, माँ सीता है, माँ दमयन्ती
माँ सावित्री–गायत्री, माँ जैजैवन्ती
माँ ही उषा निशा संध्या है चंद्र रश्मि है
माँ ही सुमनों का पराग माँ रस बासन्ती

पुत्र कुपुत्र भले हो पर माँ नहीं कुमाता
माँ तो केवल वत्सलता का जाने नाता
माँ की महिमा वेद व्यास कवि गा गा हारे
माँ चरणों में अनायास सर है झुक जाता

माँ ने जन्मे राम, कृष्ण, अर्जुन युग वंदित
वाल्मीकि तुलसी कबीर से महिमा-मंडित
विक्रम व्रती प्रताप, शिवा से माँ ने जन्मे
नानक तुलसी, गुरु गोविन्द से रण के पण्डित

आँचल भर ममता पहचान यही है माँ की
घनीभूत वात्सल्य और यमुना करुणा की
स्वयं मोक्ष, सोपान धरा में माँ का दर्शन
यहीं विश्व–वंदिता दिव्य है माँ की झांकी

माता में ही ज्ञान धर्म विज्ञान समाहित
भक्ति शक्ति अपवर्ग स्वर्ग सब माँ के आश्रित
माँ में कितना रस है नव रस बोल न सकते
माँ ही है दिक्काल भुवन में जरा-मरणजित

सकल ग्रहों में आवर्तन तब तक जब तक माँ
प्रत्यावर्तन भी तब तक जब तक है माँ
महा प्रलय के हाहाकारों में हँसती माँ
सृजन करेगा महारास जब तक है माँ

मातृ शक्ति से ही भारत है महिमामण्डित
वैदिक युग से परम्परा यह रही अखण्डित
कितने महावीर गौतम आँचल में खेले
जिनकी कीर्ति आज भी युग वीणा में झंकृत

कोई भी सम्बोधन विधि ने नहीं गढ़ा है
कोई महा विशेषण माँ पर नहीं चढ़ा है
तुम केवल हो वात्सल्य करुणा की गंगा
तुम केवल माँ हो माँ तुमसे कौन बड़ा है। ●

कृत्रिम सम्बोधन

मैं कृत्रिम संबोधनों से ही पुकारा जा रहा हूँ।
मैं नभश्वत उषा के नव क्षितिज का आरुण्य हूँ
गीत हूँ गन्तव्य, गति हूँ और युग तारुण्य हूँ
संकीर्णताओं की परिधि से मित्र अनुशासित नहीं हूँ
मैं किसी वेदान्त• से आद्यन्त परिभाषित नहीं हूँ

मैं कभी ब्याही विभाओं से प्रकाशित भी नहीं हूँ
मैं किसी बूढ़ी ऋचा से रंच उद्भासित नहीं हूँ
मैं स्वयं भव की विभा का एक वैभवपूर्ण निर्झर
किन्तु फिर भी वर्तिकाओं से सँवारा जा रहा हूँ
मैं कृत्रिम सम्बोधनों से ही पुकारा जा रहा हूँ।।

ओ प्रभा के रुद्ध स्रोतो ! फूट जाओ फुट जाओ
ओ तमस की कालिमाओ ! छूट जाओ छूट जाओ
जागरण का गीत मैं हूँ सर्जनाओं को समर्पित
साधना जीवनकला की दिव्यताओं हित विसर्जित
इन्द्रधनुषी लेखनी में कुछ अलौकिक रंग भर कर
कर रहा हूँ चेतना के मैं अगाए चित्र चित्रित
पारम्परिक अनुगमन को मैं जोड़ता नूतन क्षितिज से
पर किसी अव्यक्त से मैं नित्य हारा जा रहा हूँ
मैं कृत्रिम सम्बोधनों से ही पुकारा जा रहा हूँ।।

गीत मेरा जागरण की डाल पर पलकें उठाए
चारु स्वर्णिम चंचु में रवि नव प्रभातों का दबाए
एक दाहक ज्वार सा युग कण्ठ मुखरित हो रहा है
जड़ित कुण्ठा का तमस भी दिग्प्रहसित हो रहा है
मृत्यु की गह्वर गुहाओं में सुधा मकरंद भरता
मुक्त जीवन का मलय भी आज प्रसरित हो रहा है
मैं नहीं अनुवाद केवल मूल का चिर अवतरण हूँ
इसलिए इस तिमिर सर में मैं उंतारा जा रहा हूँ
मैं कृत्रिम सम्बोधनों से ही पुकारा जा रहा हूँ।। ●

शिव संकल्प

यही संकल्प करना है हमें अब शिवम् बनना है
शिवोऽहं मंत्र का पावन हमें उद्घोष करना है।
हलाहल जो निकल आया है युग के सिन्धु मंथन से,
उसे विषपायी अधरों से हमें अब पान करना है।।

जलंधर जड़ित कुण्ठा के नए नित जन्म लेते हैं
अनास्था के त्रिपुर कितने यहाँ नित त्रास देते हैं
जो खेवनहार नौका के वे भूले धर्म हैं अपना
जिधर भ्रम की भँवर उठती उधर ही नाव खेते हैं
विषमता और शोषण के चतुर्दिक पल रहे तक्षक
हमें युग की विसंगति का त्वरित अवसान करना है
यही संकल्प कर बैठा .... ।।

खड़ा देवत्व भी बाधक मनुज के मार्ग में वनकर
छला जिसने सुसंकल्पों के विश्वामित्र को आकर
मनुजता की अहल्या को किया किसने कलंकित है
बड़ा ही कठिन जीना है भुवन में आदमी बन कर
छिपी जो वेदना उर में उसे चुपचाप सहने दो
हमें बस मनुजता का ही नया संसार रचना है
यही संकल्प कर बैठा .... ।।

मनुजता का अमर संदेश मानव को सुना दूँगा
मनुजता के शिवालय में मनुज को ही बिठा दूँगा
मनुज की साधना से अब बनेंगे कोटि ध्रुवतारे
मनुज के दीप्त माथे पर तिलक जय का लगा दूँगा
बदल देने से परिभाषा, नहीं मानव बदलता है
चिरंतन सत्य इतना है— मनुज ही श्रेष्ठ रचना है
यही संकल्प कर बैठा............. ।।

जहाँ पर मनुज झुकता है वहीं भगवान बसता है
जहाँ भगवान बसता है, वहीं मनुजत्व हँसता है
जहाँ मनुजत्व हँसता है, सृजन का दीप जलता है
जहाँ पर दीप जलता है, वहीं विश्वास पलता है
जहाँ विश्वास पलता है, वहीं मेरी कहानी है
कहानी में अमर कवि के छिपी जग की निशानी है
निशानी गीत में अंकित - अमर स्वर ने किया मुखरित
इसी स्वर-साधना से अब मुझे बस प्यार करना है
यही संकल्प कर बैठा .... ।। ●

अडिग विश्वास

डिग रहा है आज क्यों नगराज सा विश्वास साथी।

आज बेचारी मनुजता होलिका सी जल रही है।
और दानवता यहाँ परमाणु तक में पल रही है।।
ध्वंस के तम-तोम में विज्ञान का रवि फँस गया है।
एक अन्तर्दाह बन कर शूल उर में धँस गया है।।
किन्तु फिर भी कह रहा जीवन सजाने आ रहे हैं।
भूमि क्या अब चाँद पर बस्ती बसाने जा रहे हैं।।
छोड़ती है आज मानवता मरण निश्वास साथी।
डिग रहा है आज क्यों........।।

देख कर युग-वेदना को वेदना घबड़ा रही है।
और वह सम्वेदना भी दूर हमसे जा रही है।।
आज मानव बुद्धि का उपहास पशु-बल कर रहा है।
और तक्षक भी परीक्षित के घरों में पल रहा है।।
आज लक्ष्मण-रेख का उपहास रावण कर रहा है।
और शंकर भी यहाँ विषपान से घबड़ा रहा है।
चल रहा इस लोक में कैसा विरोधाभास साथी–
डिग रहा है आज क्यों...........।।

हम नहीं इतिहास के वे मौन पन्ने बोलते हैं।
समय की युग-तुला पर हम तुम सभी को तोलते हैं।।
चेतना के पुत्र बोलो! आज हो लाचार क्यों कर।
दनुजता के हाथ सौंपा मनुज का अधिकार क्यों कर।।
यह चुनौती समय की, करते नहीं स्वीकार क्यों कर।
जीत नर की सहचरी होगी तुम्हारी हार क्यों कर।।
तोड़ दो हर शृंखला के आज बढ़कर पाश साथी।
डिग रहा है आज क्यों..........।। ●

पलास

साम की मोहक ऋचा सा मैं पवित्र पलास।

ज्वलित भी हूँ कलित भी हूँ
सृष्टि का अनुराग।
मैं प्रकृति की मांग का हूँ
एक अरुण सुहाग।
हर विपिन का गर्व मैं हूँ ग्रीष्म का उल्लास।।

फुदकते खग गांव की मैं
जानता हर रीति
नित्य पछुआ जगा जाती
एक शाश्वत प्रीति
जेठ की भीषण तपन में भी न कम उल्लास।।

हो भले अंधड़ भयंकर
आग के खर शर
पर न मेरा हास मोहक
कभी पाया बिखर
हर तपन में मुस्कराना ही रहा इतिहास।।

लोक की कुण्ठा मिटाने
धरा पर बैकुण्ठ ताने
अग्नि-पथ पर मैं चला
संगीत जीवन का सुनाने
हुआ एकाकार मुझ में हर विरोधाभास।। ●

कवि का संकल्प

घात के प्रतिघात के फण पर सदा चलता रहूँगा।
किन्तु फिर भी लोक को आलोक से भरता रहूँगा।।

आएँगे व्यवधान कितने मार्ग से मुझको हटाने,
तीव्रतम भूचाल, झंझा ज्योति आत्मा की बुझाने
क्योंकि मैं इस सृष्टि की निःसारता को खल रहा हूँ
एक ऐसा गीत जग से आज कहने जा रहा हूँ
एक अन्तर्दाह जिसको अमृत भी छूता न भय से
मैं उसी अव्यक्त को अब व्यक्त करने जा रहा हूँ
परम शाश्वत सत्य का मैं हूँ उपासक आदि ही से
इसलिए मैं हर क्षणिक को अंत तक खलता रहूँगा।
किन्तु फिर भी लोक को............।।

ये बदलते चित्र जग के टूटते सागर किनारे
बदलता भूगोल जग का टूटते नभ के सितारे
घोर झंझावात गर्जन प्रकृति की अस्थिर जवानी
कह रहे प्रतिपल यहाँ निःसारता की ही कहानी
पंच भूतों का यहाँ पर नृत्य भैरव हो रहा है
और अनअस्तित्व का ज्वालामुखी भी फट रहा है
किन्तु अनअस्तित्व से अस्तित्व की दृढ़ आस्था ले
पृष्ठ जीवन पुस्तिका के अन्त तक भरता रहूँगा
किन्तु फिर भी लोक को...........।।

काल का यह चक्र जग में नाचता रहता निरंतर
भीत होता सृष्टि का व्यापार जिसका घोष सुनकर
ओ भ्रमित मानव चुनौती दे रहा है काल जग को
जिस तरह प्रति लहर देती है चुनौती सिन्धु तट को
काल की स्वीकार करने मैं चुनौती बढ़ रहा हूँ
और उसके वक्ष पर इतिहास अपना गढ़ रहा हूँ।
संघर्ष में ब्रह्माण्ड का निर्माण अणुओं से हुआ है
इसलिए संघर्ष के ही मार्ग पर चलता रहूँगा
किन्तु फिर भी लोक को..............।।

मृत्युंजयी हूँ है मुझे अमरत्व का वरदान शाश्वत
युग युगांतर तक बनेंगे अमर मेरे गान शाश्वत
एक अन्तर्द्वन्द्व फिर भी शेष है जो कह न पाया
मनुज काया का अभी कर गूढ़ता भेदन न पाया
यह अनिश्चित प्रश्नवाचक चिह्न सी कब से खड़ी है
साधना की है शिला या मृत्यु जीवन की कड़ी है
निःसारता ही सार इसका भेद यह मैं जानता हूँ
किन्तु मैं तो साधना की वह्नि में तपता रहूँगा
किन्तु फिर भी लोक को................।।

सत्य की उस ज्योति का आभास कुछ-कुछ पा रहा हूँ
इसलिए संसार से कुछ दूर हटता जा रहा हूँ
इस कुँआरी साधना की मांग उस दिन भर सकेगी
चिर विरहिणी आत्मा अभिसार जिस दिन कर सकेगी
मुक्त हो उस स्वत्व में अपनत्व जब मेरा मिलेगा
छिन्न होंगी शृंखलाएँ ज्योति का दर्शन मिलेगा
आलोक के जिस पुंज के लघु किरण कण हम तुम सभी हैं
मैं उसी आलोक में निज किरण-कण खोता रहूँगा
किन्तु फिर भी लोक को................।।

मैं उषा बन कर जगाने आ रहा हूँ

मैं प्रभा का गीत गाने आ रहा हूँ
गीत गा तुमको जगाने आ रहा हूँ।
मैं निशा बन कर तुम्हें सोने न दूँगा
मैं उषा बन कर जगाने आ रहा हूँ।।

मैं उषाओं का सदा संगीत गाता
मैं तुम्हारी धड़कनों पर गुनगुनाता
मैं जगत के दर्द का हमदर्द बनकर
गीत सांसों का सुनाने आ रहा हूँ।
मैं निशा बन कर तुम्हें सोने न दूँगा
मैं उषा बन कर ....।।

तुम गगन के गीत चाहे गुनगुनाओ
तुम सितारों को भले ही तोड़ लाओ
किन्तु मेरा गीत माटी की उपज है
गीत माटी का सुनाने आ रहा हूँ।
मैं निशा बन कर तुम्हें सोने न दूँगा
मैं उषा बन कर...........।।

फूल पर यदि तुम हँसे तो क्या हँसी है
शूल पर यदि रो पड़े तो बेबसी है
छोड़ कर मैं कुंज सपनों के सजीले
शूल पर अब मुस्कराने आ रहा हूँ।
मैं निशा बन कर तुम्हें सोने न दूँगा
मैं उषा बन कर...............।।

गीत पलता फूल की नव-पंखुड़ी पर
गीत ढलता आँसुओं की ही लड़ी पर
गीत तिरता हंस-सा उर मानसर में
गीत की अलका सजाने आ रहा हूँ।
मैं निशा बन कर तुम्हें सोने न दूँगा
मैं उषा बन कर.................।।

मैं धरा की साँस नभ उच्छ्वास भी हूँ
मैं तुम्हारी कल्पना विश्वास भी हूँ
मैं प्रभा का सेतु बन प्राची दिशा से
भूमि से नभ को मिलाने आ रहा हूँ।
मैं निशा बन कर तुम्हें सोने न दूँगा
मैं उषा बन कर............।। ●

दीप सी सिहर-सिहर....

दीप सी सिहर-सिहर जल रही है जिन्दगी।

आदमी हो, जिन्दगी के शूल काटते चलो।
जिन्दगी की राह के ववूल छाँटते चलो।
घाटियाँ अभाव की समूल पाटते चलो।
हो सके तो हर किसी को फूल बाँटते चलो।

जिन्दगी की हर कड़ी जिन्दगी की हर लड़ी
फूल या बबूल से सर्वदा रही बड़ी।
आज तक जहान में हर बड़े बवाल का–
हर बड़े सवाल का हल रही है जिन्दगी।
दीप सी सिहर-सिहर जल रही है जिन्दगी।।

द्वेष और राग में, ध्वंस की बयार में।
हर प्रलय-प्रवाह में घोर अंधकार में।
जीत और हार में जिन्दगी झुकी नहीं।
नाश या विकास में जिन्दगी रुकी नहीं।
जिन्दगी किसी महान देवता की सर्जना।
जिन्दगी किसी महान वेदना की अर्चना।
जिन्दगी किसी महान भावना की अल्पना।
जिन्दगी किसी महान वंदना की कल्पना।
वक्त के सितार पर ढल रही है जिन्दगी।
दीप सी सिहर-सिहर जल रही है जिन्दगी।।

कौन जानता यहाँ क्या भविष्य में छिपा।
कौन जानता यहाँ क्या विधान में लिखा।
कौन जानता यहाँ जिन्दगी का धर्म है।
कौन जानता यहाँ जिन्दगी का मर्म है।
जिन्दगी चमन नहीं जिन्दगी नमन नहीं।
यह किसी अगस्त्य का सिन्धु आचमन नहीं।
यह सतत सुहागिनी, वेदना की रागिनी।
सीप में पली हुई यह सतत विकासिनी।
मोतियों की भाँति शुभ्र पल रही है जिन्दगी।
दीप सी सिहर-सिहर जल रही हे जिन्दगी।। ●

कौन तुम

कौन तुम नीरव विपिन में मालती सी डोलती हो।

लोल लतिका सी लहरती चाँदनी में गंध भरती।
कनकवर्णे! इस निशा में चन्द्रमा से होड़ करती।
अर्थ अन्तर-गीतिका का क्यों न कलिके खोलती हो।।

सघन घन से श्याम कुन्तल विज्जु सा यह रूप शतदल।
छल रही हो मोर मंजुल को निशा में आज प्रतिपल।
मोरनी के क्रान्त-मन में क्यों विकलता घोलती हो।।

तुम ललित अभिसारिका सी, बोलती हो सारिका सी।
घूमती हो विजन वन में नील नभ की तारिका सी।
नूपुरों में बीन बाँधे मान किसका तोलती हो।।

काम की स्वर्णिम छड़ी सी या कमल की पंखुरी सी।
'वाण' की कवि कल्पना सी या नवल कादम्बरी सी।
या कला की मूर्छना सी, या शिखा सी डोलती हो।।

भावना की गंध सी तुम, प्यार की सौगन्ध सी तुम।
कूँजती निकली अजाने आदि कवि के छन्द सी तुम।
मौन मुग्धा सी मनोज्ञा-मंत्र मन का मोहती हो।। ●

राष्ट्र - पर्व

नमामि मातु भारतीम्

हर पल तेरी साँस रहूँ मैं
अन्तर में विश्वास रहूँ मैं
चरणों की पुष्पांजलि बन कर
आँचल में मधुमास रहूँ मैं
अधरों पर मृदु–हास रहूँ मैं
सर पर सदा प्रकाश रहूँ मैं
नीराजन का दीपक वन कर
अलंकार अनुप्रास रहूँ मैं।

भारती से

घर में आतंकी और सीमा पर शत्रु सैन्य
वाणी ! अब राणा शिवा से बलिदानी दे।
आग वीरता की धधक उठे जवानों में
उनमें गुरु गोविंद बंदा की रवानी दे।
भर दे जवानी चन्द्रशेखर की भारत में
एकबार झांसी की रानी मरदानी दे।
इतना न दे तो इन कर्णधारों को
डूब मरने के लिए चुल्लू भर पानी दे।।

उतरो धरा पर देवि करती घोर गर्जन
सोए सिंह शावकों को फिर से जगाइए।
वीणा को छोड़ ले कृपाण रणचण्डी बन।
बाबर और गोरी के वंशज मिटाइए।
ऐसे देशघाती जो माता को डाइन कहें
उन्हें देश-सीमा से दूर ही भगाइए।
गुर्गे पाक के जो बने हैं कालनेमि सम
उनके शीश काट मुण्डमाल निज सजाइए।।

इतिहास पूरा विकृत कर डाला आज
देश सीमाएँ भी तंग होती जा रही।
केसर की क्यारियाँ धुएँ से आज जलती हैं
किन्तु सरकार शांति डफली बजा रही।
होता सिंह मौन तब गीदड़ मचाते शोर
दिल्ली की भीरुता स्वदेश को लजा रही।
हुंकृति के राग देवि भर दो आज वीणा में
देखो आज कैसी मोह निद्रा है आ रही।। ●

कहाँ गया वह तोहफा

सुनो भाई सुनो
मेरी आवाज को सुनो
मैं किसी तरंग में नहीं बहता हूँ
खुदा की कसम एकदम सच कहता हूँ
सुनता हूँ १५ अगस्त के नाम
लंदन से चला था एक तोहफा
लेकिन उसका आज तक नहीं चला है पता
कहाँ गया वह तोहफा
पूछने पर आप हो जाते हैं खफ़ा।
इसके उत्तर में तुम निर्वेद बनकर
अपने क्रीतदासों के ओंठों पर चिपका देते हो कुछ नारे
इस राष्ट्र-प्रश्न को कर देते हो एक किनारे
और सारे मामले को कर देते हो रफा-दफा
भाई खूब है तुम्हारा यह सियासी फलसफा।
तुम शायद भूल गए हो
उस सागर–मंथन में हम सबने दिया था अपना योगदान
किन्तु हे गणतंत्री देवताओ!
तुम अपनी ही गंधर्व सेना के साथ
कर रहे हो सारे फलों का भोग
शायद तुम भूल गए हो
कि जिधर भयंकर गरल उगलते हुए
नागराज वासुकी का फण था
उसे हम पकड़े थे
और तुम अहिंसक पूंछ की ओर खड़े थे।
सागर मंथन से जो अमृत निकला
उस पर तुम्हारा हो गया मौरुसी अधिकार
और हमारे लिए बचा है गरल का उपहार

हे इस लावारिश जनगण के भाग्य विधाताओ!
लक्ष्मी को तुमने अपनी अर्द्धांगिनी बनाया
रम्भा को कालगर्ल बना कर बेडरूम में नचाया
ऐरावत को गणतंत्र का प्रतीक बनाया
उच्चैश्रवा को संसद की कुर्सी बनाया
शंख को छीन कर अपने समर्थन में
उच्च स्वर से नारे फूँकते रहे
और तुम्हारी गंधर्व सेना के नायक
वफादार कुत्ते बन भूँकते रहे।
सागर मंथन से निकले धनुष से
शांति के नाम पर हम पर बारूदी तीर बरसाए जाते हैं
और धन्वन्तरि तुम्हारी शह पर
मिलावट की योजना बनाते हैं
सत्ता की कामधेनु और सुविधा का कल्पवृक्ष
सब कुछ तुमने हड़प लिया
शराब के मद की वारुणी पिया
तथा चन्द्रमा को अपने आरामगाह का वातानुकूलित संयंत्र बना दिया।
पर ऐ पुच्छ सेवियों हमें क्या दिया !
हमारे हाथों में एक बड़ा भिक्षा पात्र थमा दिया
और एक अनजाने अन्तर्राष्ट्रीय चौराहे पर
नंगा करके खड़ा कर दिया ।
अब हम अंतर्राष्ट्रीय भिखमंगे हैं
नंगे हैं, इसीलिए नग्न सत्य कहते हैं।
तुम्हारे ही द्वारा प्रवाहित पापों की कर्मनाशा में बहते हैं
हम आजाद हैं यही गुरु मंत्र तुम १५ अगस्त को दुहराते हो
आज हमें मरने की आजादी है
क्योंकि हम पुराने बलिदानी हैं
हमें सब कुछ सहने की आजादी है
क्योंकि हम हिन्दुस्तानी हैं। ●

उठो गरुड़! सीखो नव यति-गति और नये अंदाज़!

आज समय है नहीं देश से तुम माँगो प्रतिदान।
आज समय है नहीं कि खोजो अलग-अलग पहचान।।
देखो आँखें खोल भीत हैं आज धरा के प्राण।
मांग रहा यह देश आज फिर तुम सब से बलिदान।।

एक अँधेरा चाट रहा है इस भू का इतिहास।
पतझड़ निगल रहा है अपने उपवन का मधुमास।।
निर्वासित हो गया राम सा भारत का विश्वास।
काँप रहा है पारद जैसा यह नीला आकाश।।

प्रांत, धर्म, भाषा में उलझे आज उषा के गान।
और आज टुकड़ों - टुकड़ों में बँटा हुआ इन्सान।।
भू-लुण्ठित हो गयी अस्मिता ठण्डा है दिनमान।
होता नहीं यकीन, यही क्या अपना हिन्दुस्थान।।

अनजाने मर गया ऊब कर सारा स्वर्ण - अतीत।
वर्तमान भी सहमा - सहमा अब खो चुका प्रतीत।।
जाने कहाँ भविष्य खो गया बोल सकोगे मीत।
हर दिगन्त पर गिद्ध उड़ रहे, सीमाएँ हैं भीत।।

सेतुबन्ध से तोड़ रहा है अब नाता कश्मीर।
रामेश्वर पर चढ़ न सकेगा क्या गंगा का नीर ?
बंग - गोरखा - मिजो सभी तो जगा रहे हैं पीर।
डोल रहा विघटन - विष लेकर चारों ओर समीर।।

अब पंजाब आब खो बैठा विचर रहे बैताल।
कत्लगाह बन गया काल की कैसी उल्टी चाल।।
लज्जा से झुक गया अस्मिता का वह ऊँचा भाल।
सिसक रहा इतिहास याद कर पावन तख्त अकाल।।

क्या इसके ही लिए हुए थे कोटि लाल बलिदान ?
क्या इसके ही लिए हुआ था यहाँ अस्थि का दान ?
पूछ रही गंगा - कावेरी बोलो क्यों हो मौन।
यह किसके पापों का फल है अपराधी है कौन।।

अभी समय है अभी शेष है नगपति का विश्वास।
देता है आवाज तिरंगे का गौरव - इतिहास।।
साथ - साथ दे रहा धरा संग नील गगन आवाज।
उठो गरुड़! सीखो नव यति-गति और नये अंदाज़।। ●

उन्हें प्रणाम आज है

जो देश के लिए जिये उन्हें प्रणाम आज है
जो देश के लिए मरे उन्हें प्रणाम आज है
जो देश-राग गा रहे, जो प्रीति हैं जगा रहे
जो शम्भु बन गरल पिए उन्हें प्रणाम आज है

ये देश वह्नि-राग है इसे प्रणाम तुम करो
ये विश्व का सुहाग है इसे प्रणाम तुम करो
यही है विश्व भारती ऋचा-ऋचा पुकारती
यहीं-यहीं मनुष्यता स्वरूप है सँवारती

ये अर्चना की भूमि है ये वन्दना की भूमि है
ये सर्जना की भूमि है ये कल्पना की भूमि है
तुम इसे नमन करो तुम इसे चमन करो
राष्ट्र के तमिस्त्र का समग्र आचमन करो

जिन्हें भवेश से अधिक स्वदेश इष्ट है सदा
जिन्हें परार्थ के लिए स्वक्लेश इष्ट है सदा
जो भारती की आरती उतारते हों सर्वदा
उन्हें प्रणाम कर रही है गीतिका प्रियंवदा

ये भूमि सिन्धु अम्वरा सुदेव निर्मितम धरा
यही है अन्नपूर्णा यही - यही ऋतम्भरा
यहीं प्रथम लिखी गई मनुष्य की किताव है
महान भूमि का हिज़ाव आव वेहिसाव है

उन्हें प्रणाम तुम करो जो राष्ट्र को सँवारते
उन्हें प्रणाम तुम करो सृजन को जो पुकारते
उन्हें प्रणाम तुम करो जो सरहदों पे शान से
हथेलियों पे झूम-झूम शीश हैं उछालते

जो भट्टियों में खप रहे जो राष्ट्र हित में तप रहे
जो रात दिन स्वदेश का विकास मंत्र जप रहे
मनुष्यता का जो अलख जगा रहे, प्रणाम है
फसल जो प्यार की यहाँ उगा रहे, प्रणाम है

जो अंधकार में प्रकाश के प्रदीप धर रहे
मनुष्य के लिए जो स्वस्ति मंत्र पाठ कर रहे
जिन्हें न मोह व्यष्टि से समष्टि इष्ट है सदा
उन्हें प्रणाम है जो सर्व लोक शोक हर रहे

ये देश ओंकार है, ये सृष्टि का सिंगार है
यहाँ का एक - एक कण पवित्र बेशुमार है
ये कर्म की युगस्थली जुही की मंजुला कली
विराट व्यालराट् की यही - यही है अंजली

इसे प्रणाम तुम करो, ये वेद है, पुराण है
न टूटती है जिसकी लय ये वह महान गान है
इसी की शान पर मरो, इसी की बान पर मरो
इसी की आन पर सपूत! अस्थि दान तक करो

जयति - जयति नगेश जय
जयति - जयति स्वदेश जय
जयति - जयति विश्वम्भरे
हिरण्यमयि वसुन्धरे। ●

विजयादशमी

इसी दिन राम ने दस शीश रावण को सँहारा था
इसी दिन राम ने आतंक से भू को उबारा था
अँधेरे की मिटी सत्ता उजाला मुसकराया था
दनुजता पर मनुजता का विजय-ध्वज फरफराया था।

अवधपति राम की जय का बजा था लोक में डंका
ढही मीनार शोषण की मिली थी धूल में लंका
धरा की सभ्यता में एक नूतन मोड़ आया था
कि जनता की पुकारों पर जनार्दन दौड़ आया था।

अभी तक लोक में दुर्धर्ष रावण की रही सत्ता
बिना जिसके इशारे के न हिलता एक था पत्ता
जहाँ में थी न हरियाली तबाही ही तबाही थी
मगर यह जुर्म कहने की जमाने में मनाही थी।

धरा ही क्या गगन पाताल उससे थरथराते थे
वरुण, रवि, इन्द्र शशि, यम तक पगों में सिर झुकाते थे
न उसकी कोई तुलना थी न उसकी कोई सानी थी
स्वयं लंकाधिपति के साथ जब दुर्गा भवानी थी।

जिधर संकल्प रहता है उधर ही शक्ति रहती है
धनुष से शक्तिशाली के विजय की धार बहती है
अटल सिद्धांत है जग का न कोई काट सकता है
भुवन में शक्तिपूतों का नहीं अभियान रुकता है।

इसी बल से दशानन का विजय-रथ घनघनाता था
न कोई शूर रावण से कभी आँखें मिलाता था
हुआ संग्राम राघव का दशानन से भयंकर था
उधर था शक्ति का साधक इधर तो स्वयं ईश्वर था।

हुआ जब राम का पौरुष समर में व्यर्थ सारा था
तभी श्रीराम ने दुर्गा भवानी को पुकारा था
हुई थी शक्ति की पूजा हुआ था शक्ति-आवाहन
किया था राम ने संकल्प से देवी का आराधन।

स्वयं भुवनेश ने भुवनेश्वरी से शक्ति पाई थी
विजय की दुन्दुभी रघुनाथ ने भव में बजाई थी
इसी दिन शक्ति का संकल्प रघुवर ने जगाया था
इसी दिन लोक शिखरों पर दिवाकर मुसकराया था।

इसी दिन आदमी ने एक नव-आधार पाया था
इसी दिन सुप्त पौरुष ने नया शृंगार पाया था
इसी दिन शक्ति पूजन का नया आदर्श मचला था
इसी दिन आदमी की जिन्दगी का पंथ बदला था।

भुवन में मनुज की जय का लगा फिर गूँजने नारा
मनुज की शक्ति को लखकर चकित आकाश था सारा
तभी से शक्ति पूजन का मनुजता पाठ पढ़ती है
विजय-तिथि पर सदा अपना नया संकल्प गढ़ती है। ●

जाने किस रजनी में खोया

पूज्य आज तम का सौदागर और गुनाह महान
जाने किस रजनी में खोया नव युग का दिनमान।

नागफनी पर बिंधा फूल है हर दर्पण पर धूल
आम्रमंजरी कैद हो गई मालिक आज बबूल
दादुर आज बना उपदेशक चातक साधे मौन
कहीं जरूर व्यवस्था में है कोई मौलिक भूल
कुछ नागों के घर में गिरवी जीवन की मुस्कान।

काँप रहा कैलास, हँस रहा रावण का अभिमान
लक्ष्मण-रेखा का होता है पग-पग पर अपमान
अम्बर में उड़ते चमगादड़, गरुड़ समेटे पंख
शंकर भी अब नहीं कर रहा कालकूट का पान
ज्योतिपुंज पर धुआँ छा रहा कलुष बना श्रीमान।

मर्यादा नीलाम हो रही डूब रहे आदर्श
आज खुदकशी कर बैठा है मानव का उत्कर्ष
वर्तमान की आँखों में है भ्रम की खिंची लकीर
पूछ रहा इतिहास बिलख कर यह कैसा अपकर्ष
वादों की वादी में भटके आज भविष्यत गान।

आज कुहासा घना हो रहा धूमिल हुआ प्रकाश
निर्वासित हो गया आज वैदेही का विश्वास
अवमूल्यन हो गया आदमी के मूल्यों का आज
पीट रहा है शीश जंगलों में अन्तर-उच्छ्वास
करें कहाँ फरियाद, देवता आज बना पाषाण।

आज कमल वन झुलसा - झुलसा है पड़ गया तुषार
किरणों को भी बेच रहा है शोषण का बाजार
नयी फसल भी सूख गई है, भूखा है खलिहान
वैभव का आवास आज यक्षों का कारागार
दफन हो गया रोहिताश्व सा हर दिल का अरमान।

आज नयन का मान नहीं है काजल का सम्मान
आज आदमी नहीं, मान पाता उसका परिधान
बोल नहीं सकता उसका भी जीने का अधिकार
अर्जुन तो बेमौत मर गया बृहन्नला का मान
आस्था-न्याय और निष्ठा का वास बना श्मशान।

फिर भी सृजन हताश नहीं है बदलेगी परिपाटी
बदलेगी यह क्रूर व्यवस्था गमकेगी हर घाटी
बदलेगा हर मापदण्ड, बदलेगी हर परिभाषा
चंदन सी महकेगी अपनी यह यथार्थ की माटी
दस्तक आज दे रहा द्वारे एक नया तूफान।

हम मानव हैं, मानव का अधिकार न खोने देंगे
हम मानव हैं, मानव का सिंगार न धोने देंगे
हम मानव हैं, मानवता ही अपना मौलिक मंत्र
बहुत रो चुकी मानवता अब और न रोने देंगे
उठो मालियों सींचो श्रम से प्यासा है उद्यान। ●

झिलमिल -झिलमिल कर दीप जले

झिलमिल-झिलमिल कर दीप जले निःशेष हुआ तम घनाकार।

यह नहीं मात्र है ज्योति पर्व या शोभा की स्वर्णिम उड़ान।
यह मोह तिमिर के प्रांगण में जैजैवन्ती का ज्योति गान।
धरती को नाप लिया आँचल अम्बर से ले अब होड़ रहा।
अवरुद्ध ज्योति की सुरसरि के जड़ महाबन्ध को तोड़ रहा।
कालिमा लोक की पीने को साकार बना अब निराकार।
झिलमिल झिलमिल कर दीप जले............।।

लगता है अम्बर तारों से भू का परिधान सजाता हो।
या देवलोक का महाकोश कोई भू पर बिखराता हो।
या किरणों की छोरियाँ निशा में आई रास रचाने को
संकल्प ज्योति का या आया तम को नत शीश कराने को।
या उतरी साम ऋचाएँ हैं करने को भू-माँ का सिंगार।
झिलमिल झिलमिल कर दीप जले............।।

या श्याम पटल पर अंकित हैं स्वर्णिम प्रकाश के शिलालेख।
या चित्रकार ने खींच दिया रजनी के मुख पर पीत रेख।
जगमग जगमग हर जग का पथ कालिमा भगी भू से लगभग।
चुगने को कल्मष के दाने आ गए कूजते ज्योति विहग।
सम्मोहित वातावरण हुआ सुषमा का लख कर नव प्रसार।
झिलमिल झिलमिल कर दीप जले............।।

रजनी का तिमिर निगलने को मिट्टी का दीपक जलता है।
पर एक अँधेरा मिट्टी के मानव के अन्दर पलता है।
फिर एक अँधेरा भारत की सीमा पर डाले डेरा है।
कितने दीपक जल उठे! किन्तु कुटियों में अभी अँधेरा है।
अब ऐसे दीप जलाओ रे ! हर अंधकार हो क्षार-क्षार।।
झिलमिल झिलमिल कर दीप जले..........।। ●

गाण्डीव शिथिल जब पड़ जाता

लगता है अब आजादी का फिर एक युद्ध लड़ना होगा।
स्वाहा-स्वाहा का महामंत्र इस भारत में पढ़ना होगा।।
महमूद गजनवी ने लूटा था, मंदिर केवल सोमनाथ।
ये लूट रहे सम्पूर्ण देश जनता बेचारी है अनाथ।।
हर ओर यहाँ घोटाला है, हैं सभी हवाला में स्वतंत्र।
अब कहाँ यहाँ पर लोकतंत्र, है प्रबल चतुर्दिक लूट तंत्र।।
इन शिखण्डियों का, कंसों का दिल्ली पर है अधिकार हुआ।
इसलिए देश के गौरव का, गरिमा का बँटाधार हुआ।।
जब सत्ता बनती बृहन्नला गांडीव शिथिल पड़ जाता है।
जम्बुक दल भी तब बबर शेर को आँख दिखा गुर्राता है।।
अस्मिता राष्ट्र की क्षत-विक्षत बन कर द्रौपदी कराह रही।
परिवर्तन भारत चाह रहा, जनता परिवर्तन चाह रही।।
अब रुको नहीं ओ अग्निपूत बन परसुराम अभियान करो।
दिल्ली दिलवालों की होती बुजदिल दल का अवसान करो।।
धिक्कार जहाँ गद्दारों को माला पहनायी जाती है।
संतों पर और योगियों पर गोली बरसायी जाती है।।
नापाकी पाकी सत्ता से करते थे प्रेमालाप सदा।
उससे प्रेरित हो आतंकी, ढाते रहते हमपर विपदा।।
जब पकड़ा जाता आतंकी ये नेता करते राजनीति।
दे देते मोड़ प्रक्रिया को कैसी घातक यह धूर्त नीति।।
पकड़ोगे यदि आतंकी को तो बोलो क्या कर पाओगे।
बस बंदीगृह में डाल इन्हें बिरयानी मुर्ग खिलाओगे।।
अजमल सा खूनी आतंकी क्या अब तक फांसी पर लटका।
पापी कसाब का मृत्युदण्ड भी लम्बे समय रहा अटका।।
यह है वोटों की राजनीति धू-धू जल जाए देश भले।
ये सारे मनसबदार यहाँ जयचन्दों के चाचा निकले।।
पर ध्यान रहे जिनमें स्वदेश के गौरव का है मान नहीं।
अपनी जातीय अस्मिता पर होता कुछ भी अभिमान नहीं।।
जिनको इस चंदन माटी से होता दिल से है प्यार नहीं।
उनको सत्ता क्या भारत में रहने का है अधिकार नहीं।।

राम भारतवर्ष हैं

राम अपनी भक्ति हैं अनुरक्ति हैं आदर्श हैं।
राम ही हैं प्रीति यति गति रति सुमति उत्कर्ष हैं।
राम ही पहचान संस्कृति जाह्नवी के देश की,
बस चिरंतन सत्य यह है, राम भारतवर्ष हैं।।

राम ही हैं अर्थ, वे ही मोक्ष, वे ही काम हैं।
राम ही हैं, धर्म, संस्कृति मर्म, चिर अभिराम हैं।
राम से संसार में, कब दूर कोई हो सका ?
सदा कण-कण में रमे, हर रूप में श्रीराम हैं।।

राम बिन मनुजत्व का श्रृंगार हो सकता नहीं।
राम बिन हर अशुभ का संहार हो सकता नहीं।
राम की महिमा स्वयं श्रीराम कह सकते नहीं,
राम बिन बेड़ा किसी का पार हो सकता नहीं।।

राम से ही देश का संसार में सम्मान होगा।
सेतु से नगराज तक श्रीराम का यशगान होगा।
ओ प्रगतिशीलो ! उठा भुज कह रहा मैं सत्य यह
रघुवंश-भूषण के बिना पूरा न हिन्दुस्थान होगा।। ●

गांधी का आत्म-क्रन्दन

दिशा - सूचक - यंत्र झूठे।

एक धोखा खा गया विश्वास मेरा
कौरवों से घिर गया इतिहास मेरा
शांतिवन में रो रहा उल्लास मेरा
विषधरों ने कर दिए पय-पात्र जूठे।

चीखती हैं द्रौपदी सी ये दिशाएँ
टूटती तन कर धरा की हैं शिराएं
बिजलियों से जल रही काली घटाएँ
मृत्तिका से भूमि के संकल्प रूठे।

देखता हूँ है कहाँ अब देश मेरा
ढूढ़ता हूँ है कहाँ संदेश मेरा
आज रह-रह बढ़ रहा आवेश मेरा
मत्त फागुन ने किए सब पेड़ ठूठे।

है कहीं कुछ भूल जो ऐसा हुआ है
राम जाने यह कहाँ की बददुआ है
देश अंधा सामने चौड़ा कुआँ है
डूबने को जा रहे चिंतन अनूठे। ●

और मृत्यु पथ पर बढ़ने की यह तैयारी होगी

जो वैभव को त्याग घास की रोटी खाया करते
स्वतंत्रता के मंदिर में सर्वस्व चढ़ाया करते
नागफनी पर कुण्ठा की, बैकुण्ठ सजाया करते
"प्राण जाय पर बचन न जाई" प्रण दोहराया करते
उन्हें भूलना बहुत बड़ी खुद से गद्दारी होगी
और मृत्यु-पथ पर बढ़ने की यह तैयारी होगी।

जो रण - प्रांगण में दुश्मन के शीश उछाला करते
अपने घर को फूँक जगत के लिए उजाला करते
मात्र वचन के लिए सिरहने तक्षक पाला करते
जो कुश को जड़ से उखाड़ कर मट्ठा डाला करते
उन्हें भूलना बहुत बड़ी खुद से गद्दारी होगी
और मृत्यु-पथ पर बढ़ने की यह तैयारी होगी।

जो पवित्रता की रक्षा में समिधा बन जल जातीं
बन कर जो पद्मिनी आततायी को पाठ पढ़ातीं
जो यम के कर से भी प्रिय के प्राण छीन कर लातीं
जो नारीत्व अस्मिता के हित समा धरा में जातीं
उन्हें भूलना बहुत बड़ी खुद से गद्दारी होगी
और मृत्यु-पथ पर बढ़ने की यह तैयारी होगी।

सीमाओं पर मरण ऋचा जिन सिंह सुतों ने गायी
शर-शय्या पर आन-बान से अपनी सेज बिछायी
स्वयं काल - कर से जीवन की विजय ऋचा लिखवायी
मानव की अजेय क्षमता की नित अल्पना सजायी
उन्हें भूलना बहुत बड़ी खुद से गद्दारी होगी
और मृत्यु-पथ पर बढ़ने की यह तैयारी होगी।

अपने शोणित से अपना इतिहास रचाया करते
दर्द खरीद जमाने का उल्लास लुटाया करते
अविश्वास पर हिमगिरि सा विश्वास उगाया करते
एक नहीं, आस्था के सौ-सौ गगन रचाया करते
उन्हें भूलना बहुत बड़ी खुद से गद्दारी होगी
और मृत्यु-पथ पर बढ़ने की यह तैयारी होगी। ●

अनोखा प्यारा राजस्थान

हम क्या दुनिया कह रही, इसकी कीर्ति अनंत।
इसकी तो पहचान है, सती, शूरमा संत।
अनोखा प्यारा राजस्थान।।

अग्नि परीक्षा में यह धरती, सदा खरी उतरी है।
आन - बान पर मर मिटने की, परम्परा निखरी है।
पीठ नहीं दुश्मन ने देखी, ऐसा है दुर्धर्ष,
याद कर रहा है श्रद्धा से, अब भी भारतवर्ष।
अब भी रोमांचित कर देता, केसरिया परिधान।
अनोखा प्यारा राजस्थान।।

बप्पा रावल का रण ताण्डव कुम्भा की असि धारा।
जिसके विज्जुवेग से अरि ने, पाया नहीं किनारा।
यहीं - यहीं हाडी रानी ने किया मुण्ड का दान
इतिहासों में नहीं मिलेगा ढूँढ़ो यदि उपमान।
अलवर, जैसल, कोटा–बूंदी की अपनी पहचान।।
अनोखा प्यारा राजस्थान।।

अस्सी घावों की गाथाएँ गूँज रही है घर-घर।
काँप उठा था अम्बर सुनकर, सांगा का भैरव स्वर।
कण–कण में बलिदान और भू-अम्बर में ललकार।
भस्मीभूत क्लीवता करते जौहर के अंगार।
इसीलिए तो गर्व कर रहा पूरा हिन्दुस्थान।
अनोखा प्यारा राजस्थान।।

जिसके मात्र इशारे से ग्रह तारे नाच रहे हैं
श्रृंग ब्रह्म गिरि के वेदों को अब भी बाँच रहे हैं,
पनघट की क्वांरी पीड़ाएँ पीर सदा उपजाती।
मेंहदी छूटी नहीं पिया को रण के साज सजाती।।
नाचे भक्तिमयी मीरा सँग स्वयं कृष्ण भगवान।
अनोखा प्यारा राजस्थान।।

सिद्ध महा संतों कवियों से पोषित यही धरा है।
यह भामाशाहों की धरती अद्‌भुत परम्परा है।।
पूछो भारत के पानी को, अरावली बोलेगा।
रजत बालुका का कण - कण इतिहास स्वयं खोलेगा।।
मतवालों की सिंह धरा यह कहता है हिमवान।
अनोखा प्यारा राजस्थान।। ●

जनतंत्र कह रहा आज.....

आलोक पुंज पर छाया कल्मष घनाकार।
अँधियारे के होते प्रहार हैं धुँआधार।
पथराया तम में ज्योतिपुंज का दिवालोक,
गति रुद्ध, क्रुद्ध व्यवधान रहे हैं ताल ठोंक।

रेशमी उषाओं का अपना वह दिव्य देश,
कर रहा आज अपने हाथों क्यों विकृत वेष।
संकल्प भ्रमित हो रहा खिन्न आनन उदास,
भूकते चतुर्दिक श्वान, गिद्ध करते विलास।

हम कालिदास की ही पकड़े हैं आज बाट,
जिस डाली पर बैठे, उसको ही रहे काट।
बढ़ती जाती नित्य कौरवों की यहाँ जमात,
जो दिन में यहाँ उतार रहे हैं घनी रात।

उद्विग्न हिमालय आज विकल सीमान्त रेख,
जा रहे लिखे उज्ज्वल पट पर कालिमा लेख।
कर रहे हमी इतिहास विकृत, भूगोल ध्वस्त,
हो रहा सबल है ग्राह, और गजराज त्रस्त।

गढ़ चुके बहुत हैं आत्म-पतन के कीर्तिमान,
कर चुके बहुत आकुल जनगण के भीत प्राण।
आ रहा हिमालय से तिरता नव ऋचा गान,
पहरुओं ! जागते रहो सतत हो सावधान।

व्रत लेकर नवल सृजन का हम सब चले आज,
ज्योतिर्मय भारति का नित जगमग रहे ताज।
गति भरे विपुल उल्लासों का फिर महतयान,
निज राष्ट्र विभा से रहे सर्वदा कीर्तिमान।

तम के घर में है बन्दी युग की प्रभाधार,
कर दे समष्टि के लिए सभी के मुक्त द्वार।
समता के प्रांगण में बरसे शुचि गंधवाह,
हो पराभूत तम, सौरभमय हो प्रगति राह।

दोहराएँ फिर से हम माटी के साम गान,
हो राष्ट्र-ध्वजा की अम्बर में स्वर्णिम उड़ान।
आगाह कर रहा हूँ सबको, दे सुनो कान,
जनतंत्र कह रहा आज, पहरुओं सावधान।

दिवाली

दिया माटी का है लेकिन निरंतर प्राण ज्योतिर्मय
अचिर पर चिर लिखा करता विभा का गीत निःसंशय
चिरंतनता न पाता है कभी दनुजत्व धरती पर
अमर, अक्षुण्ण, अव्यय है मनुजता की यहाँ पर लय

जिन्होंने आज तक केवल मनुज के गीत गाए हैं
जिन्होंने आज तक निज प्राण माटी हित लुटाए हैं
जिन्होंने आज तक पक्की चुनौती दी अँधेरों को
जिन्होंने आज तक विश्वास के दीपक जलाए हैं।

जिन्होंने रँग बसन्ती से रँगे अपने सदा चोले
जिन्होंने मंत्र वन्देमातरम् के मृत्यु तक बोले
जिन्होंने मृत्यु में आदर्श जीने के सदा खोजे
लगे आघात अस्सी, पर नहीं रण-भूमि से डोले।

जिन्होंने राष्ट्र के हित में खिला दी गिद्ध को बोटी
न बेटी तक को दे पाए महज जो घास की रोटी
जमाने का जहर हँस-हँस जिन्होंने पी लिया सारा
विमुख हो वैभवों से बस पहन ली मात्र लंगोटी।

जिन्होंने स्नेह शोणित से अँधेरे को मिटाया है
जला कर प्राण की बाती जहाँ को पथ दिखाया है
कहीं कोई गली, घाटी न पगडण्डी अँधेरी हो
सभी को ज्योति देने हित स्वयं का घर जलाया है।

उन्हीं के नाम पर यदि एक भी दीपक जलाते हैं
उन्हीं का नाम लेकर हम स्वयं बन दीप जाते हैं
तभी सच्ची दिवाली है, यही सच्ची दिवाली हैं
नहीं तो मात्र परिपाटी दिवाली की निभाते हैं। ●

कविता की पहचान

क्या तुमने नुकीले शूलों में
फूलों को मुस्कराते हुए देखा है ?
और उन्हें निहायत खामोशी से
अपनी गंध लुटाते हुए देखा है ?
अगर देखा है तो समझने की कोशिश नहीं की है
कि ऐसा करने के लिए फूल क्यों मजबूर होते हैं।
जिस दिन तुम समझ लोगे
फूलों की यह मजबूरी
उस दिन कविता और आदमी से मिट जाएगी तुम्हारी दूरी।
बहुत दिनों से तुम सुनते आए हो
कि यह शरीर पाँच तत्त्वों से बना है।
इन्हें तुम जानते हो
पर इनके धर्म को नहीं मानते हो
ये तत्त्व हैं भूमि, आकाश, अग्नि, वायु और पानी
इन्हीं के साँचे में ढलती है
जीवन की चिरंतन कहानी
आकाश कहता है कि अपने को संकीर्ण न बनाओ
विस्तीर्ण होकर सारे जहान में छा जाओ।
यह धरती बहुत है सहनशीला
इसका अन्तर अभी है गीला
तुम्हारे अन्तर में भी करुणा का गीला प्रवाह हो
सर्व सहा बन कर सबके लिए मातृत्व अथाह हो।
आग अथाह शक्ति पुंज है
प्रकाश का सृजनमय कुंज है
अंधकार पीकर रोशनी फैलाओ
और महल से लेकर झोपड़ी तक बिखर जाओ।

वायु कहती है कि मत बाँटो दुर्गन्ध
घर-घर बाँटो सौरभ सुगंध
पानी तो इन सबसे दूना है
उसके बिना जीवन ही सूना है
घनश्याम बनकर नभ के आँगन में सरसो
और हर प्यासे अधर पर बरसो।
जिस दिन तुम समझ लोगे इनका यह धर्म
समझ जाओगे – कविता और जिन्दगी का मर्म।
क्या तुमने देखा है
किसी वाण-विद्ध हंस के व्रणों को सहलाते हुए
किसी प्रबुद्ध शुद्ध बुद्ध को।
समझने की कोशिश करो
जहाँ भी दर्द पलता है
कविता का छंद वहीं आँसू बन ढलता है।
समझने की कोशिश करो
तपती दोपहरी में गाँव का किसान किसके लिए हल चलाता है
ज्वालामुखी सी तप्त भट्टियों में
मेहनतकश का पसीना
किन ऋचाओं को गाता है
और इस माटी से प्यार करने वाला कोई बावला
माटी की अस्मिता की रक्षा के लिए
क्यों अपना शीश चढ़ाता है
क्यों कोई ममता की मूर्ति माता
अपने अंतर का सारा स्नेह निचोड़ कर
अपने दुध-मुँहे शिशु को आँचल में छिपा लेती है
क्यों प्यार की कसक एक दूसरे के लिए
अपना सब कुछ लुटा देती है।
जिस दिन तुम इनका रहस्य जान लोगे
मेरे मित्र ! कविता को पहचान लोगे। ●

यह निष्ठुर परिवर्तन

अभी नहीं शंकर ने अपना नेत्र तीसरा खोला
अभी न आसन शेषनाग का डगमग-डगमग डोला
अभी नहीं चण्डी ने अपनी रक्तिम जीभ पसारी
महाकाल ने महानाश की अभी न की तैयारी।

फिर भी भरत भूमि में दारुण हाहाकार मचा है
कश्यप ऋषि की भू पर भीषण नर-संहार मचा है
नहीं समझ में आता कैसा यह निष्ठुर परिवर्तन
आतंकी बैताल कर रहे खुल कर भैरव नर्तन।

अद्भुत दशा देश की अपने, सभी मुखौटाधारी
महज घोटाला और हवाला है पहचान हमारी
नेताओं का धर्म बन गया है करना ऐय्यारी
नटवरलालों के बाबा हैं, ये सब भ्रष्टाचारी।

आज वही नेता, बोले जो छल-फरेब की भाषा
नेताओं की बदल गई है, सचमुच अब परिभाषा
गूँगे आज बने उपदेशक, लँगड़े चाल सिखाते
जन्मजात अंधे समाज को अब हैं राह दिखाते।

रहे जन्म से जो नाकाबिल आज बन गए काबिल
मिली मंजिलें उनको जो थे नहीं दौड़ में शामिल
अभिनंदित हैं वही लगाते जो हैं सदा अँगूठा
केवल भारत में प्रचलित है यह युग-धर्म अनूठा।

सरे आम नीलाम हो रही राष्ट्र-अस्मिता निष्ठा
जितना बड़ा चोर उसकी ही उतनी यहाँ प्रतिष्ठा
दो कौड़ी के लोग करोड़ों लाखों में बिकते हैं
खाद्य-अखाद्य सभी खाकर ये प्रेत नहीं मरते हैं।

शोभित हैं उलूक, गुलशन की आज सभी शाखों पर
एक अजीब धुँआ छाया गांधारी की आँखों पर
बदनसीब वह जो स्वदेश के जितना आज करीब
खुशनसीब खरदूषण वंशी सब कुछ उन्हें नसीब।

इसका जिम्मेदार कौन है पूछा प्रश्न कभी भी
गांधारी अब पट्टी खोलो, मौका हाथ अभी भी
प्रश्न नहीं है आज यहाँ पर कितना कौन बड़ा है
प्रश्न यही है किस जमीन पर कैसे कौन खड़ा है।

प्रश्न यही है मानव मूल्यों के हित कौन लड़ा है
अत्याचारों की झंझा के सम्मुख कौन जुड़ा है
राष्ट्र-अस्मिता हित ताने संगीनें कौन खड़ा है
मीरजाफरों जयचन्दों से खुल कर कौन भिड़ा है।

राष्ट्र-प्रेम की धक-धक ज़लती अब वह आग कहाँ है
और बसन्ती चोला पहने वह रण-फाग कहाँ है
हमें नहीं कुछ गर्व पोखरण की क्या कीर्ति कहानी
जिसके सिंहनाद से सहमी बड़ों-बड़ों की नानी।

इसे मात्र विस्फोट कहो मत, यह था शिव का नर्तन
यह थी 'अमर आग' भारत की, परशुराम का गर्जन
यह थी इस सोए स्वदेश की संकल्पित अँगड़ाई
तीर्थ पोखरण में मचली थी भारत की तरुणाई।

चारों ओर यहाँ तस्कर बटमारों का है मेला
संसद में भी दिखा रहे नक्काल तिलस्मी खेला
कभी अल्पसंख्यक का नारा कभी दलित का नारा
इन सबके पीछे कुर्सी का केवल एक नजारा।

केवल आश्वासन की देते ये जनता को टाफी
हम हतभागों के हित में बस इतना ही है काफी
ये सुविधाभोगी क्या जानें आजादी की कीमत
कैसे तोड़ दासता-बेड़ी मुक्त हुआ था भारत।

किसके कारण अरावली का सिंह बना वनवासी
किसके कारण चला अग्नि पथ पर अजेय संन्यासी
किसके कारण गुरुओं ने अपना बलिदान किया था
किसके हित बंदा ने बोटी-बोटी दान किया था।

कितने दीवानों ने झेली थी सीने पर गोली
लाल हो गई थी शोणित से भारत माँ की चोली
अब तो उनकी याद भूलकर हमको कभी न आती
राम-राम तक कहने में यह जीभ बहुत शरमाती।

इन मारीचों को जब अपनी ही पहचान नहीं है
तो फिर इनके लिए देश यह हिन्दुस्थान नहीं है
राष्ट्र-अस्मिता के सम्मुख यह सबसे बड़ी चुनौती
आज समझ बैठे सत्ता की ये सब निजी बपौती।

कोई अपनी संतानों के नाम देश करता है
कोई राज-पाट पत्नी के नाम यहाँ लिखता है
इनके कारण आज लक्ष्य से देश हाथ धो बैठा
अपनी ही जमीन पर भारत अपने को खो बैठा।

अब न शहीदों की मज़ार का है सम्मान कहीं भी
सब कुछ मिलता किन्तु न मिलता हिन्दुस्थान कहीं भी
पूछो ! कभी भारती के क्या तुमने चरण पखारे ?
माँ को डाइन कहने वालों के हैं शीश उतारे ?

लगता है देशाभिमान अब बिलकुल साफ यहाँ है
जो चाहो भारत को कह लो सब कुछ माफ यहाँ है
बहुसंख्यक समाज पर यारों खुलकर हमला बोलो
और जूतियाँ अल्पसंख्यकों की वोटों हित तोलो।

नग्न चित्र देवी-देवों के चाहे रोज बनाओ
मात्र कला के नाम देश में अपसंस्कृति फैलाओ
धर्मान्तरण कराओ खुल कर पूरी है आजादी
सबके पदाघात सहने को देश हो गया आदी।

क्या केसर क्यारी की समझी तुमने दारुण पीड़ा
कितने केसी-कंस बकासुर वहाँ कर रहे क्रीड़ा
जिन्हें चाहिए गोली वे सब मुर्ग मुसल्लम खाते
और एक हम समझौते की मुरली मधुर बजाते।

नागों को तो दूध वही युग-पुरुष पिला सकता है
जो बन कृष्ण धूल में इनका गर्व मिला सकता है
मत चूको चौहान हाथ में अभी समय है अपने
वरना मर जाएँगे सारे अपने भावी सपने।

हमें पाक से एक बार अंतिम रण लड़ना होगा
वरना गरुड़ पुराण चिता पर हमको पढ़ना होगा
तुम्हें मात्र प्रक्षेपों पर हैं निज दिव्यास्त्र चढ़ाना
और विश्व के मानचित्र से पाकिस्तान मिटाना।

जो कुछ रही राष्ट्र की पीड़ा वह हमने कह डाली।
बाकी निर्णय हाथ तुम्हारे ओ भोले वनमाली।। ●

विपिन बंधुओं के प्रति

अपने इन विपिन बंधुओं का शत-शत वंदन अभिनंदन है।
उनके अवदानों पर अर्पित भावों का पावन चंदन है।।
हिन्दुत्व और संस्कृति के हित इन सब ने जो अवदान दिया।
हर युग में नूतन यति-गति दी अद्‌भुत युगीन अभियान दिया।।

ये भक्ति-शक्ति के चिर संगम युग· को नूतन आदर्श मिला।
इनके वल पर दिनमान सदृश हमको यह भारतवर्ष मिला।।
हम श्रद्धा से अवदानों को अव भी करते हैं याद सदा।
रुक गया काल का क्रूर चक्र वनवासी जिन्दावाद सदा।।

बोलो शबरी सी भक्ति कौन इस भूतल में पा सकता है।
है कहीं प्रमाण बेर जूठे जगदीश्वर भी खा सकता है।।
है और कौन जिसके द्वारा सूरज निगला जा सकता है।
है कौन शिल्पि जो नील और नल के आगे आ सकता है।।

है कौन धरा पर देश और इतना कर सकता स्वागत है।
इसका उत्तर है एक यही; वह भारत है, वह भारत है।।
है कौन व्रती जो लक्ष्मण को संजीवनि–सुधा पिला सकता।
कंदुक समान द्रोणाचल को लंका रण भू में ला सकता।।

अपनी भीषण हुँकारों से घननादों को दहला सकता।
ऐसी स्वर्गोपम क्षमताएँ कोई क्या है दिखला सकता।।
केवल दो घड़ियों में कोई क्या सकल सृष्टि है माप सका।
उस जाम्बवान के पौरुष को कोई क्या अब तक नाप सका।।

जिस परम ब्रह्म को नेति–नेति कह वेद पुकारा करते हैं।
जो मात्र कल्पना से सारा ब्रह्माण्ड सँवारा करते हैं।।
जिनका ले पावन नाम लोग "भव" सिन्धु पार हो जाते हैं।
उनको निषाद वन बंधु गंग के पार उतारा करते हैं।।

अपने इन विपिन बंधुओं का आओ हम सब सम्मान करें।
आओ इनके उत्कर्षों पर हम भारतीय अभिमान करें।।
इनसे न कभी हम बिछुड़ेंगे, करनी है यही प्रतिज्ञा अब।
फिर से त्रेता उतार भू पर भू-माँ को हिन्दुस्थान करें।।

इनके अवदानों का वंदन, इनके अभियानों का वंदन।
इनके बलिदानों का वंदन, इनके यश–गानों का वंदन।।
अपने अतीत का करो ध्यान, जागो नवयुग के हनुमान।
ओ विपिन बंधुओ! आर्य धरा कर रही तुम्हारा यशोगान।। ●

प्यारा हिन्दुस्तान हमारा

जिसे देख सुरधनु शरमाता,
देव-लोक भी शीश झुकाता।
वह धरती का स्वर्ग मनोहर,
प्यारा हिन्दुस्तान हमारा।।

हिम किरीट बन जड़ा शीश पर, उन्नत पर्वतराज हिमालय।
चरण पखार कृतार्थ हो रहा जिसके निशि दिन है रत्नालय।
कटि में कनक करधनी बनकर राज रहा गिरिवर बिन्ध्याचल।
गंगा ब्रह्मपुत्र कावेरी भरती जीवन में नव हलचल।

रंग रंग के सुमनों वाला।
पहने इन्द्रधनुष की माला।
ममता का संदेश सुनाती,
जहाँ अमर संस्कृति की धारा।।

यहाँ न कोई हिन्दू - मुस्लिम यहाँ न कोई सिक्ख ईसाई।
बौद्ध, जैन, पारसी नहीं है हम सब हैं आपस में भाई।
इस उपवन के हम पंछी हैं सबकी अलग-अलग है भाषा।
फिर भी हम कहते रहते हैं सदा एकता की परिभाषा।

बँधे सभी हैं एक डोर से।
हाथ उठा कह रहे जोर से।
मंदिर - मस्जिद - गुरुद्वारों में,
रहता है भगवान हमारा।।

रंगमंच यह प्रकृति नटी का कण-कण में छविओं का नर्तन।
नानक और कबीर यहाँ पर करते रहते युग परिवर्तन।
राम - रहीम खेलते हिलमिल कृष्ण-करीम ज्ञान बतलाते।
तुलसी के स्वर में कवि तुंचन मानवता का पाठ पढ़ाते।

बुद्ध जहाँ पर ज्ञान सिखाते।
महावीर युग धर्म बताते।
जहाँ विविध जीवन धाराएँ,
मिलकर बनी एक ही धारा।।

एक आस विश्वास एक है और एक है लक्ष्य हमारा।
इस चन्दनवदना माटी का कण-कण है हम सबको प्यारा।
गूँज रही आसेतु हिमालय सप्त स्वरों में पावन वाणी।
हम सब सुमन एक माला के हम केवल हैं हिन्दुस्तानी।

एक वृक्ष की हम डाली हैं।
इस गुलशन के वनमाली हैं।
हम भारत के, भारत अपना,
यही हमारा है युग नारा।। ●

देश बेचने वाले इन मारीचों को पहचानो

कितनी सदियाँ बीत गईं थीं अँधियारे को पीते।
कितनी सदियाँ बीत गईं थीं मुर्दा बनकर जीते।।
सदियों तक अपने ही घर में बेघरबार बने थे।
नभ में इस स्वदेश के छाए रौरव मेघ घने थे।।

कभी गजनवी कभी मोहम्मद गोरी लूट रहे थे।
जुल्म सितम नादिरशाही के क्या क्या नहीं सहे थे।।
इसके वैभव पर अपना कुछ भी अधिकार नहीं था।
बोलो ! हम सा लुटने वाला जग में और कहीं था।।

लँगड़े लूले तैमूरों ने वार हजारों नोचा।
किन्तु न हमने कभी डाकुओं के बारे में सोचा।।
बाबर से बदजातों ने भी इसको चूसा जी भर।
किन्तु हमें क्या कभी हुआ गम लुटने का रत्ती भर।।

रंगी और फिरंगी आए स्वत्व हरण करने को।
चरागाह बन गया राम का देश खुला चरने को।।
पर हमको जब होश हुआ, हमने आवेश भरा था।
बलि पर बलि जब हुई सूर्य आजादी का उतारा था।।

तब हमने सोचा अब तो मधुमास हमारा होगा।
अपनी धरती और सकल आकाश हमारा होगा।।
इस आसेतु हिमाचल तक इतिहास हमारा होगा।
हास और उल्लास संग विश्वास हमारा होगा।।

विश्वम्भरा धरा का हर वरदान हमारा होगा।
इसके मणिमय कोश और अवदान हमारा होगा।।
युगों - युगों से दबा हुआ अरमान हमारा होगा।
सागर से हिमगिरि तक हिन्दुस्थान हमारा होगा।।

पर इन काले फिरंगियों ने ऐसा रास रचाया।
अन्नपूर्णा के हाथों में भिक्षा - पात्र थमाया।।
मरीचिका की छलनाओं में जन-गण को भरमाया।
पुनः लुटेरों को चरने हित खुल कर आज बुलाया।।

पहले लुटते थे गैरों से, अब अपनों से लुटते।
मल्टी नेशनल कम्पनियों की छाया में हम घुटते।।
यक्षों के घर में अब गिरवी होगा वैभव सारा।
सुफल हमारे श्रम-वैभव का लूटेगा बंजारा।।

तड़प - तड़प कर मर जाएगी अब अस्मिता हमारी।
इस धरती को पी जाएँगे ये खूनी व्यापारी।।
हम न देश की विभव सम्पदा के होंगे अधिकारी।
अब हम केवल कहलाएँगे जगत प्रसिद्ध भिखारी।।

अभी नहीं कुछ भी बिगड़ा है अभी समय है पूरा।
राष्ट्र बिना आर्थिक आजादी के है सदा अधूरा।।
आंगुलिमालों के घातक षडयन्त्रों को तुम जानो।
देश बेचने वाले इन मारीचों को पहचानो।।

जब स्वदेश बिक जाएगा तब होगा कहाँ ठिकाना।
हर भारतवासी घर में हो जाएगा बेगाना।
चीख - चीख इतिहास कहेगा अश्रु सना अफसाना।
इसीलिए अब भाव स्वदेशी सबको है अपनाना।।

श्रेय - प्रेय सब बने स्वदेशी, गूँजे मन्त्र स्वदेशी।
पूज्य बने आसेतु हिमाचल केवल तन्त्र स्वदेशी।।
जो भी होगी वस्तु स्वदेशी उसको अपनाएँगे।
इस स्वदेश के गीत स्वदेशी भाषा में गाएँगे।।

तन - मन - जीवन प्राण स्वदेशी हमको अब करना है।
शुद्ध स्वदेशी भाव आज जन - गण मन में भरना है।।
बस स्वदेश के सृजन - गीत अब हमको गाना होगा।
जो भी हो उत्पाद स्वदेशी अब अपनाना होगा।।

तन्त्र स्वदेशी, मन्त्र स्वदेशी, अब आधार रहेगा।
अब न देश तुगलकों बाबरों का यह भार सहेगा।।
धरती उनकी जिनमें इस धरती का प्यार रहेगा।
भारत में बस भारतीयता का अधिकार रहेगा।।

सारे रक्तपापियों को अब दूर हटाना होगा।
महामन्त्र अब भारतीयता का ही गाना होगा।।
बर्बर फिरंगियों की चालों को ठुकराना होगा।
इस धरती को केवल हिन्दुस्थान बनाना होगा।।

शत-शत दीप जले

शत-शत दीप जले।
आज अमावस की बगिया में स्वर्णिम सुमन खिले।।

यह दीपों की पंक्ति मनोहर
भीतर-बाँहर का तम पीकर
नाच रही पुलकित यामा में
तारक दल से होड़ लगाकर
जिसे देख उर की सरसी में गीत मराल पले।

हिल-हिल कर दीपक है जलता
या चंचल शिशु पुलक मचलता
या शोभाओं की उड़ान हित
संकल्पों का स्वर्ण पिघलता
या निशि बाला की बगिया में गीत प्रसून खिले।

बाँध तिमिर को निज बाहों में
शलभों की मीठी आहों में
कनक प्रसून बिखेर रहे हैं
संसृति की नूतन राहों में
अंधियारे के लौह पाश सब जाते आज गले।

कहाँ ज्योति के यत्न विफल हैं
ये रश्मिल अभियान सफल हैं
युग मोहन की अग्नि वेणु सुन
गुंजित राधा के पायल हैं
नवजीवन के अभिभावक ये सृजन हेतु मचले।

ओ प्रदीप! पावक के वाहक
ओ समता के स्वर्णिम शावक
उगे ज्योति की फसल धरा पर
वनो दीप्त प्रतिपल तम दाहक
अभी अँधेरा कितना बाकी देखो दीप तले।। ●

प्रकाश की क्यारियाँ

आज अमावस की पाटी पर खींच सुनहली धारियाँ।
एक मंगलाचरण लिख रहीं किरणों की सुकुमारियाँ।।

श्रम की नगरी में आई हैं ये पूनम की छोरियाँ
चुगती हैं कोयला अमा का गोरी-गोरी गोरियाँ।
देख रहा स्वर्णिम दिगन्त से नये सृजन का आदमी
अब भी जग में जग न सकी क्यों नई फसल की गौतमी।
अँधियारे की उम्र पी रहीं जब प्रकाश की क्यारियाँ।।

एक नया संकल्प चन्द्रमा सा गीतों में आ रहा
एक कुहासा नयी कलम को अनजाने भरमा रहा।
जब कुण्ठा की लंका नगरी अँधियारे में ऊबती
एक दीप वाले सीता तब किसकी सुधि में डूबती।
चुग लेती पीतल की चोंचें जीवन की लाचारियाँ।।

ज्योति मजूरिन पाटा करती काली-काली घाटियाँ
यह ज्योतिपी गगन गढ़ देता नित नूतन परिपाटियाँ।
पनघट का अभिनंदन होता नित पूरब के गीत से
धरती माता मुसकाती है नील गगन की प्रीत से।
नई सुहागिन सी रँग देती है हल्दी से सारियाँ।। ●

सर्वव्यापक राम

हमारे छंद में जो है, तुम्हारा नाम ही तो है।
हृदय में जो हमारे है, अयोध्या धाम ही तो है।
सभी जड़ और चेतन में रमा जो है, न कोई है,
मलय की गंध सा केवल भुवनपति राम ही तो है।।

सभी की जिन्दगी के तो तुम्हीं उत्कर्ष हो प्रभुवर।
अचेतन और चेतन के तुम्हीं हो हर्ष हे प्रभुवर।
तुम्हारे ही इशारे से चमकती व्योम गंगा है—
हमें क्या विश्व को लगता कि भारतवर्ष हो प्रभुवर।।

तुम्हारे नाम के आखर हमारे छंद में छाए।
पवन जल अग्नि भू नभ में भुवन के द्वन्द्व में छाए।
तुम्ही से रम्यतम आराम भारतवर्ष शोभित है—
तुम्हारे रूप मायातीत हर सम्बन्ध में छाए।।

तुम्हीं हो प्राण भारत के तुम्हीं उच्छ्वास भारत के।
तुम्हीं हो आस्था, संकल्प, दृढ़-विश्वास भारत के।
तुम्हीं राणा तुम्हीं विक्रम, शिवा गोविन्द सिंह बन्दा—
तुम्हीं उल्लास भारत के, तुम्हीं इतिहास भारत के।।

कभी तो आप बोलोगे, हृदय का भेद खोलोगे।
विवश होकर हमारे सुप्त अंतर को टटोलोगे।
तुम्हारे और मेरे बीच में सम्बन्ध कैसा है—
इसे मेरी नहीं अपनी तुला पर नाथ तोलोगे।। ●

भारत-वंदना

जहाँ कल्पना धारण करती हो नित नव परिवेश रे।
वही हमारी जन्म भूमि है, वही हमारा देश रे।।

हरी दूब पर जहाँ सजा हो शबनम का शृंगार रे
नदियाँ इठलाती बहती हो ज्यों चाँदी की धार रे
हर पावस में मोती-कण बन झरती मेघ फुहार रे
जहाँ सुवासित मंद-गंध बिखराती मलय बयार रे
भूतल का उद्यान जहाँ पर है कश्मीर प्रदेश रे।
वही हमारी जन्म-भूमि है, वही हमारा देश रे।।

शुक सारिका राम यश गाते श्रद्धा के अवतंस रे
श्यामा मंजरियों पर नाचे लहरों पर कलहंस रे।
मेघ-बिजलियों के नर्तन से होड़ ले रहे मोर रे
जहाँ चाँदनी में चिंगारी चुगते चतुर चकोर रे
जिसकी सुषमा पर सम्मोहित होता स्वयं सुरेश रे।
वही हमारी जन्म-भूमि है, वही हमारा देश रे।।

हर फागुन में रास रचाते अब भी माखन चोर रे
राधा को गुलाल से रँगते अब भी हैं बरजोर रे
मन-भावन सावन भरता जीवन में सदा हिलोर रे
जहाँ गुलाबी सन्ध्या आती सोने का नित भोर रे
जिसकी नित्य आरती करते चन्दा और दिनेश रे।
वही हमारी जन्म-भूमि है, वही हमारा देश रे।।

जहाँ अयोध्या, मथुरा, काशी, तीरथराज प्रयाग रे
जहाँ लोक का कलुष धो रही गंगा भर अनुराग रे
वृन्दावन में धेनु चराता गीता का भगवान रे
और अस्मिता का रचते हैं राम जहाँ हिमवान रे
अब भी गूँज रहा कण-कण में वेदों का संदेश रे।
वही हमारी जन्म-भूमि है, वही हमारा देश रे।।

जहाँ सिंह के दाँत खोल मुँह गिनते शिशु बरियार रे
रगड़ कण्ठ से जहाँ देखते वीर खड्ग की धार रे
जहाँ लोक हित अस्थि दान का सजता है त्यौहार रे
और सती के सत के आगे होता यम लाचार रे
जहाँ दिया था उपनिषदों का ऋषियों ने उपदेश रे।
वही हमारी जन्म-भूमि है, वही हमारा देश रे।।

जहाँ सिन्धु पर सेतु बाँधते निर्वासित बलवान रे
जहाँ हुए हैं वीर धनुर्धर पार्थ, भीष्म, चौहान रे
जौहर की ज्वालाएँ धधकीं मुण्ड-माल का दान रे
हल्दीघाटी अभी कह रही चेतक का अभियान रे
जहाँ शिवा राणा का अब भी दिखता रण-आवेश रे।
वही हमारी जन्म-भूमि है, वही हमारा देश रे।।

जहाँ क्रांति का बिगुल बजाते, भगत सिंह आजाद रे
जलियांवाला बाग दिलाता बलिदानों की याद रे
जहाँ स्वयं आकाश कर रहा अर्पित इन्हें प्रणाम रे
अपनी आगदीप्त हम करते लेकर इनका नाम रे
जहाँ स्वप्न में भी कायरता करती नहीं प्रवेश रे।
वही हमारी जन्म-भूमि है, वही हमारा देश रे।।

रामायण गीता से पुलकित जिसके पावन ग्राम रे
जिसका बच्चा-बच्चा भाषित होता ज्यों घनश्याम रे
जहाँ सूर तुलसी मीरा सँग कबिरा गाते गीत रे
अभी गूँजता है कानों में जहाँ साम संगीत रे
जिसको रचकर धन्य हो गया कलाकार सर्वेश रे।
वही हमारी जन्म-भूमि है, वही हमारा देश रे।।

आधुनिक पर्व

आओ! हम मुक्त करें कैद से उजाले।
आओ! हम खोलें नव क्षितिजों के ताले।।
आओ! हम कर दें सीप के हवाले।
जीवन की प्याली में नई सुधा ढालें।।

गोधरा : कुछ कविताएँ

1.

अचानक एक आसमान टूटा
बिजली गिरी
धरती से फूटा ज्वालामुखी
विस्फोट की चपेट में
जले कुछ दर्जन सपने
जली कुछ दर्जन सम्भावनाएँ।

अपनी अपनी आस्थाओं
और भावी योजनाओं के साथ।
बचे थे कुछ अधजले
अयोध्या के
पर्यटन सूचना - चित्र।
कुछ मिट्टी के खिलौने
जो बच्चों ने खरीदे थे।
कुछ देव मूर्तियाँ
उन्हीं में भगवान राम की एक खण्डित मूर्ति
जिस पर लिखे अक्षर नहीं जल पाए थे—
—निसिचर हीन करौं महि।

2.
प्राकृतिक आपदा नहीं
मानव निर्मित एक षडयंत्र
घृणा, विद्वेष, ईर्ष्या और
धर्मान्धिता का पाशविक उन्माद
ज्वलनशील साधनों का संयोजन
पूर्व निर्धारित
पूर्व नियोजित दुष्कर्म,

बर्वरता का वीभत्स ताण्डव
विवशता की ऐसी त्रासदी
आग के आलिंगन की
अनिच्छित ज्वालाओं को
भुजाओं में बाँधने की।

3.

माँ का बेटे को गोद में लिए चिपका हुआ जलना।
पति का पत्नी को विसूरते हुए जलना
पैरों के होते न भाग पाते हुए जलना
हाथों के रहते
लपटों की हथकड़ियाँ पहने हुए जलना
चीखते हुए जलना
कराहते हुए जलना
किसी की सहायता की उम्मीद में
मौन तिल-तिल कर जलना
असहाय, उपेक्षित, अनाद्रित।

4.

नाव का किनारे से टकराते हुए डूब जाना
किनारों का मौन साधे देखते रहना
द्वार पर पहुँच कर घर में न घुस पाना
घर को जलते हुए देखना
और भाग न पाना
लेकिन वातावरण में कोई परिवर्तन नहीं
आकाश में चीत्कार करते—
कुछ गीधों, चीलों और कौवों के अतिरिक्त
विधानसभाओं और संसद का निर्वाध चलना
न तो प्रतिक्रिया का प्रदूषण।

नहीं आशंका;
शायद जलने वालों का
एक बड़ी संज्ञा से जुड़ा होना।
अल्पसंख्यक का जुर्म भी एक स्वाभाविक उन्माद
बहुसंख्यक का क्रोध भी, दण्डनीय अपराध।

28.02.2002

1.

प्रेतों के लिए प्रतिशोध
प्रेतों के लिए जीवितों की हत्या
तथाकथित जलाने वालों का जलना
हिंसा का प्रतिशोध प्रतिहिंसा
और फिर तो—
हिमालय का हिलने लगना
तूफानों का गरजना
नदियों में सैलाब का मचलना
जन प्रतिनिधियों की आतुरता
संसद का सिहर उठना
राष्ट्रपति भवन तक की कवड्डी
संसद का मछली बाजार में
बदल जाना
मुट्ठियों में तूफान बाँधे
एकता, अखण्डता का राग अलापना
भविष्य के लिए दुवले होते
काजियों इमामों का काफिला
लेकिन हिंसा अभी भी जारी है
कुछ जा चुके
कुछ की तैयारी है।

2.

कुछेक बुद्धिजीवियों का तर्क है—
जलाने वाले कौन थे
इसका प्रमाण ?
मतलब यह कि जलने वाले
स्वयं जलने को व्याकुल थे
डीजल, पेट्रोल, किरासिन तेल के साथ
अयोध्या से ही चल रहे थे।
हजारों की भीड़ उन्होंने ही बुलाई थी
उनका अनुरोध था—
हमें जला दो।
हम नश्वर संसार से ऊबे हैं
हममें कुछ मेहता, कुछ पटेल
कुछ शाह, कुछ देसाई कुछ दुबे हैं
यही उनकी पुकार थी
वे खुद ही जल गए
पृथ्वी पर भार थे
टल गए।

3.

कुत्ते कुत्तों का मांस नहीं खाते
सिंह सिंह का शिकार नहीं करते
गीध गीधों की लाश पर नहीं बैठते
कौवों की बिरादरी एक की मौत पर
आसमान सिर पर उठा लेती है
मात्र आदमी ही—
(प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ उपादान आदमी)
आदमी को खाता है
और इस कुकृत्य पर सिद्धान्तों का मखमली मुलम्मा चढ़ा
अपने चातुर्य पर मुस्कराता है। ●

एक गुमशुदा गाँव

अपनी ही बस्ती में खोया, आज हमारा गाँव।
किसी गली में नहीं दीखती थोड़ी सी भी छाँव।।

ढूँढ़ रहा हूँ कहाँ गया वह हीरक दिव्यालोक।
जहाँ शोक भी बन जाता था मुद मंगलमय श्लोक।।
जहाँ किसी रघुवर के वर से युग बन गया अनन्य।
चरण-स्पर्श से जड़ पाहन भी होते थे चैतन्य।।
आज वही जड़ बना हुआ कर अंगीकृत ठहराव।
अपनी ही बस्ती में खोया, आज हमारा गाँव।।

आज चतुर्दिक छिड़ा राम - रावण का है संग्राम।
प्रबल दशानन बना किन्तु लाचार हो रहा राम।।
प्रगति-पंथ पर लगा हुआ है गहरा पूर्ण विराम।
बन बैठा है सृजन - देवता इस धरती से वाम।।
कदम - कदम पर अट्टहास कर रहा आज ठहराव।
अपनी ही बस्ती में खोया, आज हमारा गाँव।।

अब न किसी सीता को देता है मुद्रिका अशोक।
अंधकार की लगी हुई है हाट यहाँ पर थोक।।
पांचाली की सरेआम लूटी जाती है लाज।
पर न कृष्ण का आज दीखता वह प्रेरक अंदाज।।
अब गजेन्द्र की रक्षा वाले पंगु बन गए पाँव।
अपनी ही बस्ती में खोया, आज हमारा गाँव।।

डाल - डाल पर तन कर बैठे हैं पापी बैताल।
पूर्ण सफल हो रही हूण - संस्कृति की गर्हित चाल।।
रुद्ध प्रगति-रथ, किन्तु निकलते मायावी रथ रोज।
देश-लाश पर आयोजित कर रहे गिद्ध हैं भोज।।
हंस उड़ गए, पर कागों का कांव - कांव हर ठांव।
अपनी ही बस्ती में खोया, आज हमारा गाँव।।

आज गाँव की कुशल पूछना है अक्षम्य अपराध।
अगर गाँव की बात करो तो तीर तानते व्याध।।
नाम गाँव का हमें बताने में लगता अपमान।
क्योंकि व्यंग्य से उसे सभी कहते हैं हिन्दुस्थान।।
दीमक बन जो चाट रहे हैं, वही खे रहे नाव।
अपनी ही बस्ती में खोया, आज हमारा गाँव।। ●

तब माटी का इतिहास लिखा

मैंने जीवन में हास लिखा शृंगारिक वाग्विलास लिखा
लेकिन जब माटी चीख पड़ी तब माटी का इतिहास लिखा।।

जब कुटिल सघन तम छाता है सारे जग को भरमाता है
दुश्चक्र रचा करते निशिचर हर विभाविन्दु खो जाता है
झंझा से दीपक बुझ जाता यह लोक अशोक न बन पाता
अम्बर के काले क्षितिजों पर तब मैंने शुभ्र प्रकाश लिखा
तब माटी का इतिहास लिखा।

जब कुटिया हो जाती उदास जन जीवन हो जाता हताश
जलता जीवन का अमलतास मुरझाता असमय ही पलाश
युग को उत्फ़ल्ल बनाने को जीवन में जीवन लाने को
तब जर्जर छाती पर युग की मैंने अकुण्ठ कैलास लिखा
तब माटी का इतिहास लिखा।

जब कोई बेहूदा बर्बर घर में घुस आता ले लश्कर
लाचार सभ्यता हो जाती पथरा जाते दिग्विजयी स्वर
लोहू में गर्मी लाने को केहरि का धर्म सिखाने को
तब राणा और शिवा के सँग नरनाहर दुर्गादास लिखा
तब माटी का इतिहास लिखा।

जब अपना मधुवन मुरझाता कोई न सुमन है खिल पाता
यह धरा निपूता बन जाती जीवन में पानी मर जाता
तब भू उर्वरा बनाने को हर कलिका मुक्त खिलाने को
पतझड़ के सूखे अधरों पर तब सौरभमय मधुमास लिखा
तब माटी का इतिहास लिखा।

आस्था के स्वर जब मर जाते दिक्-भेदी लोचन पथराते
संस्कृति के सारे नभचुम्बी गौरव के ध्वज हैं गिर जाते
जागृति की अलख जगाने को संजीवनि सुधा पिलाने को
तब मस्तक पर इस भारत के मैंने कवि तुलसीदास लिखा
तब माटी का इतिहास लिखा।

कर दें हम सीप के हवाले

आओ ! प्रिय अपने को आज बदल डालें।
जीवन की प्याली में नई सुधा ढालें।।

छोड़ दें मुखौटों में रूप को छिपाना।
छोड़ दें नकाबों का आरोपित बाना।
मोड़ दें अँधेरे की फौलादी बाहें।
कुंकुम से जीवन की भरें नई राहें।
आओ ! अब मुक्त करें कैद से उजाले।
आओ ! प्रिय अपने को आज बदल डालें।।

कब तक हम आँगन की नई पौध काटें।
आओ ! हम मिल जुल कर सूनापन बांटें।
चंदन सी माटी यह शीश पर चढ़ाएँ।
मातृ-भूमि सूक्तों को फिर से दुहराएँ।
आओ ! हम खोले नव क्षितिजों के ताले।
आओ ! प्रिय अपने को आज बदल डालें।।

आओ हम गोदी में बाँध ले घटाएँ।
बरसा दे मरुथल में सावनी छटाएँ।
जलधर बन अन्तर के कोश को लुटाएँ।
स्वाती की धारा बन आज बरस जाएँ।
आओ ! अब कर दें हम सीप के हवाले।
आओ ! प्रिय अपने को आज बदल डालें।। ●

अन्तर-ग्रंथि खोलो

आज अन्तर-ग्रंथि खोलो।
चेतना के सित शिखर पर बैठ कर अन्तर टटोलो।।
विम्व भी दिखता नहीं है
धूल दर्पण पर जमी है।
किन्तु भ्रमवश कह रहे हैं
आ गई निज में कमी है।
शुभ्र उर-आकाश से ले वाष्प दर्पण आज धोलो।।

काल सीमा ही मरण है
किन्तु सीमाहीन शाश्वत।
झर रहा झर-झर निरंतर
ज्योति-निर्झर बन तथागत।
क्यों दिशाओं में बँधे हो, द्वार शाश्वत मुक्त खोलो।।

प्रश्न अपने से करो अव
और उत्तर स्वयं बोलो।
मौन सी वे ग्रंथियाँ हैं
हो अकुण्ठित उन्हें खोलो।
देख लो धारा नदी की लहर पर मत झूम डोलो।।

जिन्दगी केवल नहीं है फूल
वह तो शूल भी है।
वह अगर आकाश तो
विश्वास की भू-धूल भी है।
पूर्ण वनना चाहते हो तो अमृत विप साथ घोलो।। ●

स्वप्न

परिश्रान्त हो स्नेहहीन हो
महाव्योम की यात्रा से जब दिनकर विह्वल
छिपा प्रतीची के आँचल में
लज्जित होकर, हार मानकर
लिए दहकता निज अंतस्तल।
तब निशिबाला ने
अंधकार के महासिंधु में
छोड़ दिया था विश्व-तरी को
अंधकार से आच्छादित अनजाने पथ पर।

उसी समय अवतीर्ण हुए तुम
अनजाने में अनाहूत से
अथवा किसी कल्पना-खग ने फेंक दिया था
तुम्हें विश्व की अलसायी बोझिल पलकों पर
कौन कहाँ पर तुम जन्मे थे
बिन बोले कल्पना दूत से
नव शिशु कोमल नव प्रसूत से
आह्लादित था हृदय तुम्हारी चंचल माया का दर्शन कर।
जिसके चारों ओर मचा था अनस्तित्व का ताण्डव नर्तन।
एक रात तुममें ही मैंने देखा था एक सितारा
जिसे रज्जु से सुदृढ़ बाँधने का सुयत्न मैंने कर डाला
किन्तु सितारा काँप रहा था अनस्तित्व का सुन कर गर्जन
होते थे प्रतिपल परिवर्तन।
तभी अचानक महाकाल के महाप्रतापी जयी करों ने
फेंक दिया था उसे तोड़ कर दूर क्षितिज के पार किसी अनजाने पथ पर
मैं केवल हो मूर्तिमान देखता रह गया उसका छिपना
सोच रहा हूँ इसी भाँति यह जग है सपना।
जहाँ मनुज जीवन तारे को श्वांस और आशा की रजु से
बाँध लिया करते हैं।
और काल के दीर्घ बाहु वे बिना यत्न के
अकस्मात ही तोड़ दिया करते हैं।
यही स्वप्न का जीवन दर्शन
बिन बोले ही हमें करा देता है मानव जीवन दर्शन
यद्यपि सारा जग सपना है
जहाँ नहीं कुछ भी अपना है।। ●

प्रश्न स्वयं से

बहुत दिनों के बाद स्वयं से मैंने खुल कर प्रश्न किया है।

इतनी कृत्रिमताएँ ओढ़ी सत्य मर गया घुट कर मेरा।
और बन गया कथ्य गीत का छलनाओं से भरा अँधेरा।।
जहाँ न जाना था गीतों को वहीं बिक गए गीत हृदय के।
अंतर का सारा सम्वेदन विधुर बन गया पूर्व प्रणय के।।
अपने ही हाथों गढ़ डाली मैंने ही भूलों की लंका—
जानबूझ कर मैंने अबतक भ्रम का ही आधार लिया है।
बहुत दिनों के बाद स्वयं से मैंने खुलकर प्रश्न किया है।।

जिस पथ पर भी चला, रह गया जाकर थोड़ी दूर अकेला।
छूट गए सारे पथ साथी फिर भी बढ़ता रहा झमेला।
इस पथ पर कुछ और पथिक हैं यह दुनिया को बता न पाता।
किन्तु जगत नित क्रूर अँगुलियाँ बस मुझ पर ही रहा उठाता।।
मेरी अपनी दुर्वलता पर रात-रात भर तारे रोए—
मैंने भी नयनों का कितना चुपके पारावार पिया है।
बहुत दिनों के बाद स्वयं से मैंने खुलकर प्रश्न किया है।।

मैंने अपनी स्वयं कलम का मूल्य न सच्चाई से आँका।
रहा झाँकता दुनिया भर में दिल दर्पण में कभी न झाँका।।
आज अकेले जब रोता हूँ मेरे साथ कलम है रोती।
कौड़ी मोल आज तक बेचा अपनी भावुकता के मोती।।
प्रश्न कर रहा हृदय युगों से किन्तु आजतक मिला न उत्तर—
बन कर निराधार मैंने क्यों सबको ही आधार दिया है।
बहुत दिनों के बाद स्वयं से मैंने खुलकर प्रश्न किया है।। ●

अपना तो उलटा सरगम है

छलनाओं की महादौड़ में मैं पीछे ही सदा रहा हूँ।
पर खुश हूँ इसलिए कि हरदम नदी-मूल की ओर बहा हूँ।।
बन देवता न अब तक मैंने सुविधाओं का अमृत पिया है।
मगर आदमी को अपने ही मैंने जी भर सदा जिया है।।
झूमा नहीं सफलताओं की कभी वारुणी पी जीवन में।
असफलताओं पर भी मुझको अब तक कोई रहा न गम है।।
अपना तो उलटा सरगम है।।
तिनका हूँ पर अपनी भी तो कुछ हस्ती है जान रहा हूँ।
जो आँधी का बल पा उड़ते उनको भी पहचान रहा हूँ।।
अब तक नहीं किसी मठपति की देहली पर यह शीश झुका है।
इसीलिए हर पुरस्कार मेरे घर से कुछ दूर रुका है।।
थमे हुए सबके हाथों में केवल भाड़े के परचम हैं।
पर अपने हाथों में उड़ता अपनी माटी का परचम है।।
अपना तो उलटा सरगम है।।
सब गाते हैं अपनी पीड़ा, मैं जग की पीड़ा गाता हूँ।
सब फूलों से झोली भरते, मैं शूलों से भर लाता हूँ।
सबके पास मुखौटे लेकिन अपना मौलिक साज अलग है।
मात्र यही कारण है जिससे अपना हर अंदाज अलग है।।
मैं बंजारा जनम - जनम का केवल पीर अधर गाते हैं।
इसीलिए मेरे गीतों का हर अक्षर आँसू से नम है।।
अपना तो उलटा सरगम है।।
गगन - दीप बन यक्ष महल का मुझको जलना कभी न आया।
और ढलानों पर मतलब की, दो पग चलना कभी न भाया।
अपना धर्म महज जलना है, अपना दीपक अपनी बाती।
इसीलिए हर किरण दीप की नहीं उधार स्वरों में गाती।
परिचय अपना मात्र यही है—सूरज दबा चोंच में रखता।
करता हूँ निर्माण नीड़ का, वहीं जहाँ पर होता तम है।
अपना तो उलटा सरगम है।। ●

गाँधी बाबा के ये बन्दर

गाँधीजी के तीनों बन्दर पैदाइशी हरामी निकले।
लूट-खसोट और घोटालों में जग जाहिर नामी निकले
रहे काइयां इनमें से दो वे मंत्री सरनाम बन गए
एक रहे जो बने प्रवक्ता झूठों में क्या नाम कर गए।

चरखा कहता चर-खा चर-खा ये पुरा ही देश चर गए
फितरत बाजों से भी आगे ये दुनिया में नाम कर गए
सत्य भूल कर नहीं कहेंगे लगा लिया है मुँह पर ताला
और दूसरा नहीं सुनेगा पड़ा बधिर से अब है पाला।

देश भले चूल्हे में जाए क्या देखें हम इसकी हालत
जो कुछ होना है होने दो अपनी कुर्सी रहे सलामत
जो रह गया तीसंरा बन्दर सुनता कब जनता की पीड़ा
झूठ बोलने का ही उसने उठा लिया है पूरा बीड़ा।

अजब कारनामे हैं इनके इन कपियों की गजब कहानी
इन तीनों के कई मुखौटे डुबकी मार पी रहे पानी
गाँधी बाबा तुम भी बदले, दिखे सर्वदा लंगोटों में
आज शान से जा बैठे हो, तुम हजार के ही नोटों में।

इस मर्कट जमात को युग का वंदन है शत नमस्कार है
देखों कैसे अब स्वदेश की नैया करती भँवर पार है
पहले गाँधी ने पाले थे अंध, बधिर, गूंगे ही बन्दर
पलटा किन्तु समय ने खाया, तीनों ही बन गए कलंदर।

आतंकी अजमल कसाब पर पैंसठ कोटि बहाये अब तक
अरे मर्कटो ! इन नागों को, कुछ बोलो, पालोगे कब तक
ना बोलेंगे, ना देखेंगे, नहीं सुनेंगे चरित तुम्हारे
लूटो धरो स्वीस बैंकों में अभी बली हैं भाग्य सितारे।

जितना चाहो जैसे लूटो, गदर मचा है आज देश में
और लूट का वह काला धन रख आओ चुपके विदेश में
नाथूराम गोडसे ने तो एक बार गाँधी को मारा
लेकिन तुमने कई बार गाँधी को भव के पार उतारा।

इन्हीं बन्दरों की तिकड़म से संसद भी बेजार हो गई
चलते हैं जूतास्त्र निरंतर वह मछुआ बाजार बन गई
आओ अब हम भारतवासी गाँधी के बन्दर बन जाएँ
इन कपियों के मकड़-जाल में फँसने से शायद हम बच जाएँ। ●

नवगीत

थकी - थकी दोपहरी ताल में नहाती है।

कितना अजीब है भीड़ का अकेलापन,
वीतराग खोया सा मेरा संन्यासी मन।
गौना के पहले ही गोरी भाग जाती है,
थकी - थकी दोपहरी ताल में नहाती है।।

घुसपैठी सूनापन जीवन को खलता है,
अनब्याहा एक भाव अन्तर में पलता है।
रेखाएँ उलझन की यों ही वन जाती है,
थकी - थकी दोपहरी ताल में नहाती है।।

आता आकाशों में चिन्तन अतीत का,
चित्र उभर आता है वचपन के मीत का।
यादों की पुरवैया पीड़ा उकसाती है,
थकी - थकी दोपहरी ताल में नहाती है।।

लतिका अवमूल्यन की कितनी बढ़ आई है,
धूप परिवर्तन की कितनी चढ़ आई है।
अंकगणित जीवन का चिन्तन की थाती है,
थकी - थकी दोपहरी ताल में नहाती है।।

उलझन के दायरों में भागता हुआ शहर
किस को अवकाश यहाँ अनमनी थकी डगर।
गूँगी सी जिन्दगी कभी नहीं गाती है,
थकी - थकी दोपहरी ताल में नहाती है।।

अंक मिट गए सारे पिछले इतिहासों के,
अर्थहीन सरगम हैं बूढ़े विश्वासों के।
नूतन सम्बोधन नित जलकुम्भी पाती है,
थकी - थकी दोपहरी ताल में नहाती है।।

सारे अनुबंधों की दुलहनिया बाँझ हुई
सँझवाती सोई है अँगना में साँझ हुई।
गहरे हस्ताक्षर कुण्ठाएँ कर जाती हैं,
थकी - थकी दोपहरी ताल में नहाती है।।

सुधियों का पपिहा अब बेवस घबड़ाया है,
खाली अनुमानों के नभ से फिर आया है।
आशा की शबरी क्यों बेवश हो जाती है,
थकी - थकी दोपहरी ताल में नहाती है।।

ऐसे में अपने को भला बहुत लगता हूँ,
आदमकद आईने में जब भी मैं लखता हूँ।
अनबोली भाषा को कविता मिल जाती है,
थकी - थकी दोपहरी ताल में नहाती है। ●

धूल की परत

शीशे पर एक परत धूल की जमी।

आती बांस वन से यह भोर की हवा,
बाँसुरी बजाती सी भोर की हवा।
घने ढाक गाछों से मखमली सीवानों से
दर्द को जगा कर कुछ कर रही सवा।
एक और पंखुड़ी गुलाब की गिरी—
गीत के नयन में है विराग की नमी।
शीशे पर एक परत धूल की जमी।।

आयु का मधूक एक और चू गया,
काल का हिरन फसल कुछ और चर गया।
उम्र पालकी लिए कहार काल का
याद की गली में शेष चिह्न धर गया।
एक नए तीर पर पहुँच गयी तरी,
किन्तु हा ! हमी में एक आ गई कमी।
शीशे पर एक परत धूल की जमी।। ●

रूपायित धूप

खिड़की से झाँक रही आज नरम धूप।
गोरी परिणीता से रूपायित धूप।।
दुबक गया सूनापन कोने में वैठ
सामन्ती नियमों सा पूरा गया ऐंठ
वर्फीली विस्मृति सी सिमट गई धूल
एकाकीपन खलता है जैसे हो शूल
कौंध गया संस्मृति में एक प्रश्न बोध
चमक उठा विस्तर पर दर्पण सा रूप।
खिड़की से झाँक रही आज नरम धूप।।

दमक उठी एक ओर रूप की बरात
अधरों पर दौड़ चली एक और बात
सुधियों की रानी सा चम्पई स्वरूप
इंगुर की शीशी से संयम के रूप
ओठों से फिसल गई मायावी धूप।
खिड़की से झाँक रही आज नरम धूप।। ●

कृष्ण का वंशीवादन

कुण्ठा का प्रतीक कालियनाग
जिसका माथा अहम् से भी ऊंचा था
कृष्ण ! तुमने उसे नाथा था।
और यह भी सत्य है कि उसको बचाने के लिए
सुन्दरता ही दोनों हाथ बाँधे नाग-सुन्दरियों के रूप में आई थी
जिन पर मुग्ध होकर तुमने वंशी बजाई थी।
कालान्तर में किसी नीरो ने भी वंशी बजाई थी
पर कृष्ण ! तुम्हारे और नीरो के वंशी वादन में था एक मौलिक फर्क
तुम्हारा वंशी वादन नहीं था काफी हाउस की टेबल पर उपजा तर्क.
तुम्हें अपनी असीम शक्ति पर था पूरा विश्वास
और नीरो का विश्वास था उसका आत्मविलास
तुम कृष्ण होकर भी नहीं थे अमावस्या
और नीरो स्वयं था अपने लिए एक समस्या
तुम्हें आज भी देखता हूँ गीताप्रेस के कल्याण में कल्याणी मुद्रा में
तो अपने से ही पूछता हूँ
किन्तु तुम्हारा वंशीवादन क्यों नहीं सुन पाती है अब हिन्द की सरजमीं
क्या हमारे देश में हो गई है नागों की कमी
तुम्हारी रासलीला अब कैबरे में कैद हो गई है
और तुम्हारी कालजयी गीता क्लीव मरघट में सो गई है
नागों की इसी कमी को भाँप कर
सुनता हूँ दिल्ली में लगाई गई थी नागों की नुमाइश
वह नुमाइश खूब जमी थी।
यद्यपि दिल्ली में नागों की कोई नहीं कमी थी
बड़े-बड़े नाग बाहर से मँगवाए गए थे
और आकर्षक रंगीन पोस्टर छपवाए गये थे।
हे मुरली के बजैया और नाग-नथैया
कृष्ण कन्हैया!
अब बांसुरी के स्वर तो नहीं सुनाई पड़ते हैं
पर देश की हर गली में अनगिनत नाग फुंफकारते हैं। ●

जिज्ञासा

जगत का लखकर क्रमिक विकास
हो रहा मन में ऐसा भान।
कौन वह जिसका भृकुटि-विलास
सृष्टि को करता है गतिमान।
न पाये जिसको अबतक जान,
अरे वह कैसा है छविमान।।

एक पीड़ा सा सबमें व्याप्त
मूर्छनाओं सा मृदु आधार।
सदा जिसकी वीणा की नित्य
गूँजती ग्रह-पथ में झंकार।
भर रहा सम्पुट में भी प्राण,
अरे वह कैसा है छविमान।।

सिन्धु की आकुलता बन कौन
चन्द्रमा को छूता बन ज्वार।
पपीहा का पिय-पिय सुन कौन
बरसता बन स्वाती की धार।
सर्वदा अनगाया सा गान,
अरे वह कैसा है छविमान।।

बसन्ती रथ पर आता कौन
सजाने प्रकृति नटी का गात।
कली के अधर चूमता कौन
रश्मियाँ बन कर चुपके प्रात।
समीरण करता किसका गान,
अरे वह कैसा है छविमान।।

चेतना में मेरी हो व्याप्त
यही होता प्रतिपल आभास।
तुम्हारे ही स्वरूप में देव
छिपा है अथ-इति का इतिहास।
बने फिर भी मुझसे अनजान,
अरे तुम कैसे हो छविमान।।

युगों से गीतों के उछ्वास
न तुमको कर पाये हैं व्यक्त।
कसकता तारों का आरोह
न रहने दो अब तो अव्यक्त।
मुझे दो वह अनगाया गान,
गा सकूँ तुमको ही छविमान।। ●

सम्भवामि युगे - युगे

मुझे सख्त नफरत है उन तक्षकों से
जो श्रद्धा का दूध पीकर जहर उगलते हैं
और मौसम के मुताबिक अपने मुखौटे बदलते हैं।
मुझे सख्त नफरत है उन सुविधावादी सेनानियों से
जो देश सेवा के नाम पर पेंशन की गलियों में टहलते हैं।
मुझे सख्त नफरत है ऐसे भोपुओं से
जो साहित्य-सेवा की दुहाई देकर
अपने सियासी आकाओं के इशारे पर बजते हैं
और मात्र इनामी टुकड़ों पर पलते हैं।
मुझे सख्त नफरत है उन माया मृगों से
जो अपने छद्म रूप से जनगण की जानकी को हरते हैं
और शिखण्डी बन कर किसी भीष्म को छलते हैं।
इसीलिए मैंने इन सब की साजिश के विरुद्ध
अपने गीतों के हाथों में थमा दी है
आग और बारूद
और उन्हें पहरेदार के रूप में तैनात कर दिया है
इंसानियत के प्रत्येक द्वार पर।
मेरे दोस्त ! आज मैं पूरी तरह युयुत्सु बन गया हूँ
मेरा युद्ध उनके विरुद्ध है
जो देश के भूगोल को गलियों का भूगोल बनाते हैं
मेरा युद्ध उनके विरुद्ध है

जो देश के इतिहास को कबीलों का इतिहास बताते हैं।
और यह तयशुदा हकीकत है
कि जब-जब शोणित की गर्म धारा
इस पवित्र वसुन्धरा पर बहती है
तब-तब वात्सल्यमयी भू माता के वक्ष पर
नूतन सम्भावनाओं की फसल उगती है,
मेरे दोस्त ! उस ओर देखो
जिधर उदयाचल के स्वर्ण-शृंगों के ऊपर
अरुणिम उषा का द्वार है
नये युग का बंदनवार है
नयी प्रभात के अधरों पर
अपूर्व लालिमा नाचने लगी है
और नई मानवीय क्रांति की गीता
वाचने लगी है।
इसीलिए मेरे गीत असीम सम्भावनाओं से पुलकित होकर
फिर वही कालजयी सार्थक घोष दुहराने लगे हैं
उषा की यह प्रसव पीड़ा
इस विश्वास का साक्षी है
कि कोई आलोकवर्षी चेतना अवतरित हो रही है।
ऐसे में निहायत जरूरी है कि मेरे गीत
इस युग घोष को निनादित करें
तभी तो मेरे गीत
आस्था एवं विश्वास के
युगल चक्रों वाले रथ पर आरूढ़ होकर
क्रांत चेता महारथी के रूप में आ रहे हैं
और मानवीय मूल्यों का वही अमृत घोष दुहरा रहे हैं
सम्भवामि युगे-युगे
सम्भवामि युगे-युगे। ●

अपने कवि से

जहाँ आह की पगडण्डी पर बैठी हों गमगीन व्यथाएँ।
जहाँ तृपित लोचन के आँसू कहते हों कुछ करुण कथाएँ।
लेकर दर्द किसी सागर का विकल बनी हों तरल तरंगें—
और क्रौंच की अन्तर पीड़ा की पलती हो आदि प्रथाएँ।।

उन राहों पर कवि तुम चलना।
बन कर गीत वहीं तुम ढलना।।

शोषण, उत्पीड़न निर्मम बन जहाँ कर रहे हों मनमानी।
और लपट के पट बुनती हो जहाँ देश की अमर जवानी।
काले काले अँधियारे में डूबी हो कुटिया बेचारी—
स्नेहहीन दीपक की बाती जहाँ बची हो मात्र निशानी।।

वहीं दीप बन कर कवि जलना।
बन कर गीत वहीं तुम ढलना।।

जहाँ देश का भूखा बचपन माँग रहा हो सूखी रोटी।
बेच रही हो जहां जवानी अपने तन की बोटी-बोटी।
जहाँ शोक से पथराई हों नग्न बुढ़ापे की दो आँखें—
और जहाँ पर छीन ली गई हो जनता की फटी लँगोटी।।

वहीं त्रिलोचन बन तुम खुलना।
बन कर गीत वहीं तुम ढलना।।

जहाँ तर्क के अस्त्र बाँध कर धूर्त्त कर रहे हों मक्कारी।
प्रगतिवाद का पहन मुखौटा चला रहे हों ठेकेदारी।
चन्दन वन में भी रहकर जो उगल रहे हों जहर भयंकर—
पाठ पढ़ाते हों जनगण को माटी से करना गद्दारी।।

मेरे कवि तुम वहीं मचलना।
बन कर गीत वहीं तुम ढलना।। ●

अपनी पहचान

अपनी तो पहचान अलग है।

मैं यायावर जनम-जनम का जलना ही बस आत्म-कथा है
रमता योगी बहता पानी अपनी तो बन गई प्रथा है
मत पूछो मेरी आदत को, मैं बदनाम बहुत हूँ प्यारे

हर पीड़ा से रिश्तेदारी, प्रेयसि युग की मूक व्यथा है
मैंने ही हर परवाने को आत्म-समर्पण-धर्म सिखाया
इसीलिए मेरे गीतों की लौ की यार उठान अलग है।
अपनी तो पहचान अलग है।।

जो आस्तीनों में छिप डसते उनसे कुछ भी प्रीति नहीं है।
और पीठ पर वार झेलना अपने कुल की रीति नहीं है।
जो कुछ भी दिल में रहता है वही अधर अपने गाते हैं
कोई गुनहगार समझौता करना अपनी नीति नहीं है।
जिन्हें न हो विश्वास सत्य पर वे तर्कों के तीर चलाएँ
पर अपने संकल्प-कर्ण के तीरों का सन्धान अलग है।
अपनी तो पहचान अलग है।।

यहाँ आदमी को भी जो टुकड़े-टुकड़े बाँटा करते हैं
लेकर नाम आदमी का जो स्वार्थ फसल काटा करते हैं
जिनके पाखण्डी शिविरों में सम्वेदन खुदकशी कर रहा
और रोशनी की राहों पर धुँध-धुआं पाटा करते हैं
ऐसी से तो कभी आजतक अपना समझौता न हुआ है
इसीलिए इन सबसे हट कर अपना तो इंसान अलग है
अपनी तो पहचान अलग है।।

मेरे लिए देश की धरती नहीं मात्र गाँवों का जंगल।
स्वर्ग विनिन्दित तीर्थराज सम पावन ज्यों तुलसी गंगाजल।
यह लोकोत्तर ऋचा भूमि है गीता गायत्री से गुंजित
अनसूया सीता सावित्री और पद्मिनी होती पूजित
यमुना तट पर धेनु चराते जहाँ सकल लोकों के स्वामी
इसीलिए भुज उठा कह रहा मेरा हिन्दुस्थान अलग है।
अपनी तो पहचान अलग है।। ●

जीवन की राह में

कुछ शुल मिले कुछ फुल मिले
अनुकुल मिले प्रतिकुल मिले।
संघर्षों की मँझधार मिली
दुरस्थ कभी कुछ कुल मिले।।

सारा जीवन ही बीत गया
इन सब प्रश्नों को हल करते।
कब तक यह जीवन ढोएँ-हम
अपने को ही छलते छलते।।

अथ के सँग उपसंहार मिले
कुछ हार मिली कुछ हार मिले।
लेकिन इतना मैं जान रहा
सब में विष के उपहार मिले।।

मेरा अस्तित्व रहा हिम-सा
बन गया नीर गलते-गलते।
युग की पीड़ा में होम हुआ
निर्धूम जला जलते-जलते।।

कुछ सार न पाया जीवन का
सारे पथ ऊल जलूल मिले।
चाहा गुलाब को बोना मैं
पर मेरे हाथ बबूल मिले।।

बस यही जगत में जाना है
कुछ नहीं आज तक जाना है।
हर रोज पूछता अन्तर है
खुद को कितना पहचाना है।।

आगत पथ तो अनजाना है
किसने भविष्य को जाना है।
खाली हाथों जग में आए
खाली हाथों ही जाना है।।

जग छोड़ चला जग भूलेगा
ढह जाएँगे सब राज किले।
जो समझ नहीं पाते इसको
वे जग जेता भी धूल मिले।। ●

कैसे गीत आज मैं गाऊँ

दिशा-दिशा तम से वोझिल है बेच रहे हैं सब अँधियारा
अपनी ही धरती पर खोया प्यारा हिन्दुस्थान हमारा
कई बार दर्पण में देखा पर खुद को पहचान न पाया
स्वर्ण मृगों की धमा-चौकड़ी ने सीता को फिर भरमाया
चर्चा आज देश की करना बहुत बड़ा अपराध हो गया
तुम्हीं बताओ अपनी माटी की पीड़ा कैसे सहलाऊँ
कैसे गीत आज मैं गाऊँ।।

मंचों पर यक्षों का कब्जा, कवि, जोकर-कव्वाल हो गए
मर्कटिया टोलियाँ बना कर दरवारी नक्काल हो गए
कविता में कुछ अर्थ नहीं पर अर्थदायिनी है लफ्फाजी
कविता के ही नाम विक रही खुल कर आज चुटकुले वाजी
कुछ व्याकुल हैं विरह व्यथा से व्रज वनिताएँ मात हो गईं
यह नौटंकी का ओछापन वोलो मैं कैसे अपनाऊँ
कैसे गीत आज मैं गाऊँ।।

चन्द्र और भूषण ने जिसका शोणित से शृंगार किया है
तुलसी-मीरा और सूर ने अविनश्वर आधार दिया है
कुरुक्षेत्र सा दिनकर से जिसको अग्निल आवेश मिला है
पंत, प्रसाद, निराला से जिसको नूतन परिवेश मिला है
इन रजकों की छलनाओं से उसे आज वनवास मिल गया
लेकिन मैं सीता-सी पावन कविता को कैसे ठुकराऊँ
कैसे गीत आज मैं गाऊँ।।

मुझे न जाने क्यों लेती है खींच देश की चंदन माटी
और न जाने क्यों कर देती बाध्य स्वर्णमंडित परिपाटी
जब भी मैं लेखनी उठाता चित्र आदमी का आ जाता
और उसी की पूजा में ही गीत पुष्प बन कर चढ़ जाता
सुविधाओं की महा हाट में इन सा बिकना कभी न आया
फिर कैसे इन बहुरुपियों के चेहरे आज लगा कर आऊँ
कैसे गीत आज मैं गाऊँ।।

इन्हें न देश - जाति की चिन्ता ये सब तो निश्चिन्त संत हैं
खुल कर चरते गीत फसल को इनके लटके भी अनंत हैं
हरियाली ये जहाँ देखते वहीं हिरण बन कर आ जाते
आयोजक को बड़े प्यार से चूना ये बैताल लगाते
श्रोताओं से पंक्ति-पंक्ति में आशीर्वाद माँगते रहते
समझ नहीं पाता कैसे मैं, इनके ये तिलस्म अपनाऊँ
कैसे गीत आज मैं गाऊँ।।

चंदन वन को डसनेवाले आज मंच पर गौरव पाते
तक्षक हैं पर स्वयं परीक्षित के घर में ये पाले जाते
कविता के प्रेतत्व दौड़ में केशव इनसे हार गए हैं
इनका अनुसंधान यही है— मिलते कहाँ शिकार नए हैं
ऐसे इस संक्रान्ति काल में कौन धर्म मैं धारण कर लूँ
जन्मेजय मैं बनूं कि या फिर बाजीगर बन बीन बजाऊँ
कैसे गीत आज मैं गाऊँ।। ●

लो आई वर्षा रानी

जंगल में मंगल गाती
रिमझिम संगीत सुनाती
कृषकों का मन पुलकाती
मोरों में प्रीति जगाती
आकुल धरती के कण-कण में भरती नई जवानी।
लो आई वर्षा रानी।

विजली के दीप जलाती
गुलमेंहदी फूल खिलाती
वादल की ढोल बजाती
दिन को भी रात बनाती
केशों का जूड़ा खोले, पहने हैं साड़ी धानी।
लो आई वर्षा रानी।

प्यासों की प्यास वुझाती
हर मन की जलन मिटाती
वुँदों की खील लुटाती
घासों की दरी विछाती
करधनी इन्द्रधनु वाली बाँधे कटि में दीवानी।
लो आई वर्षा रानी।

इसका पनघट है सागर
भरती है अपनी गागर
खारा जल सुधा वनाकर
हर्षाती है वरसा कर
रानी पनिहारिन बनती करती कैसी मनमानी।
लो आई वर्षा रानी।

हम भी वर्षा बन जायें
प्यासों की प्यास वुझायें
हर दिल में प्रीति जगायें
वन श्याम घटा छा जायें
सावन भादों की जन-जन से सुन्दर कहें कहानी।
लो आई वर्षा रानी। ●

ग़ज़ल - पर्व

माली अनेक हो गए फिर भी चमन उदास।
शायद उगा हुआ कोई बरगद है आस-पास।।

दरिया : तेजाब का

एक सन्नाटा शहर में इस कदर अब छा रहा है।
देख कर मरघट जिसे खुद से बहुत शरमा रहा है।।

अब सिवानों में न महुआ फूलता है भूल कर भी
बेहया का सघन जंगल आज बढ़ता जा रहा है।

गिद्ध मँडराने लगे हैं आसमां में भोर से ही
हर मकां के सामने दल भेड़ियों का आ रहा है।

अब न अच्छा लग रहा है रात पर इल्ज़ाम मढ़ना
कौन सा ऐसा अंधेरा दिन न जिसको ला रहा है।

आ गए हम भटक करके किन वियाबानों में हैं
आदमी साये से भी अपने बहुत घबड़ा रहा है।

आम्र डाली एक भी अब बाग में बौरा न पाती
आज हर माली गुलिस्तां का स्वयं बौरा रहा है।

गंधजीवी पी गए हैं गंध सारी क्यारियों की
अधजले शव सा सकल वातावरण धुँधुआ रहा है।

राम जाने कौन सा अध्याय यह इतिहास का है
हर तरफ तेजाब का दरिया यहाँ उफना रहा है। ●

कहाँ जा रहे हैं लोग

जाने कहाँ से चल के कहाँ जा रहे हैं लोग।
अपनी शिनाख्त भी नहीं कर पा रहे हैं लोग।।

मनहूस वादियों में जहाँ एक किरण नहीं,
मंजिल उधर है— आज यह बतला रहे हैं लोग।

इन्सान मर गया है इसी हादसे में आज,
इंसानियत का अर्थ, पर सिखला रहे हैं लोग।

मासूमियत के खून से जिनके रँगे हैं हाथ,
गाँधी की कसम आज वही खा रहे हैं लोग।

तपते रहे हैं धूप में हम दिन में इस कदर,
पर शाम को छाया हमें दिखला रहे हैं लोग।

इंसाफ, वफा, दिल का जिन्होंने किया है कत्ल,
उन सबके मायने वहीं समझा रहे हैं लोग।

तारों को आसमां में चुनौती हैं दे रहे,
लेकिन जमीन से बहुत घबड़ा रहे हैं लोग। ●

मेरी ग़ज़ल

लोग कहते हैं – नया अंदाज है मेरी ग़ज़ल।
और कुछ कहते हैं – कोई राज़ है मेरी ग़ज़ल।

किन्तु मेरी लेखनी का एक ही दावा रहा
इस समूचे देश की आवाज़ है मेरी ग़ज़ल।

जहाँ भी देखा अँधेरा, दीप बन कर जल गया,
कालिमा की जीत पर एतराज है मेरी ग़ज़ल।

लाश पर इंसानियत की भोज जो रचते यहाँ,
उनकी रहमत की नहीं मोहताज है मेरी ग़ज़ल।

लोक में साजिश अमावस की न कोई हो सफल,
पूर्णिमा का एक दिलकश साज है मेरी ग़ज़ल।

सर हथेली पर लिए राहे वतन पर जो चलें,
उनके सर पर एक सुन्दर ताज़ है मेरी ग़ज़ल।

राज या अंदाज़ अपनी लेखनी का है यही,
इस वतन की अस्मिता पर नाज़ है मेरी ग़ज़ल।

भूल कर दुखती रगों को छेड़ना यारो नहीं
जान लो इतना, बड़ी जांवाज़ है मेरी ग़ज़ल। ●

ग़ज़ल

आज तक तनहाइयों से इस कदर नाता रहा।
होती क्या तनहाई यह अहसास ही जाता रहा।।

हम उमीदों की गठरिया रात भर ढोते रहे
इस तरह अपने यहाँ ताउम्र जगराता रहा।

खोज़ में इंसान की भटका किए हम सर्वदा
पर हमारे द्वार हर इक बन खुदा आता रहा।

यार खुशियों में हमारी हर कोई शामिल हुआ
किन्तु अश्कों से ज़माना खूब घबड़ाता रहा।

लाश ढोते रह गए हम मान्यताओं की सदा
यह जुनूं बस सिरफिरों में नाम लिखवाता रहा।

वेखुदी में पड़ के हमने दी मिटा अपनी खुदी
बस यही संताप हमको रात दिन खाता रहा। ●

ऐसा ताना-बाना कर

ऐसा ताना-बाना कर।
दीनों से याराना कर।।

नाप नजर से यह युग पूरा,
ऐसा कुछ पैमाना कर।

अपना दर्द न बोल किसी से,
दिल में वह तहखाना कर।

दीन-अदीन जहाँ सब आएँ,
ऐसा एक ठिकाना कर।

पुलकित हो स्वदेश का कण-कण,
ऐसा कुछ अफसाना कर।

ढूँढ़ा करे जमाना, अपनी,
ग़ज़लों से दीवाना कर।

चढ़े मुलम्मा कभी म ऊपर,
सदा कवीरी वाना कर।

जो भू मां के लिए खप गए
उनको ही नज़राना कर।। ●

हम क्या न गँवारा करते हैं

इस जुल्मों सितम की दुनिया में हम क्या न गँवारा करते हैं।
साहिल पे खड़े हों लाख मगर मौज़ों को निहारा करते हैं।।

दुनिया की कशमकश में न कहीं इंसान हमारा खो जाए
इस कारण अपने इंसां को दिन रात पुकारा करते हैं।

साहिल पे खड़े जो हँसते हैं सीवानों में ही ठहरे जो
हम उनको दहर में आने को ही मौन इशारा करते हैं।

इंसान से बढ़कर कोई नहीं इंसां ही खुदा इस दुनिया का
इससे इंसां की राहों को पलकों से बुहारा करते हैं।

समझौता नहीं हैवानों से सिद्धान्त यही इक अपना है
हम अपना सीना खोल सदा उनको ललकारा करते हैं।

अपनी तो जमीं यह जन्नत है चंदन, गंगाजल सी पावन
इसकी ही मोहव्वत में अपनी गर्दन भी उतारा करते हैं।। ●

ग़ज़ल

तिनके हवा के रुख से अब मीर बन गए हैं
शायद इसीलिए हम गम्भीर बन गए हैं

दिल की जमीं पे लाखों अरमान दफन करके
चलती मज़ार की हम तसवीर बन गए हैं

सब द्वार पर हमारे मुँह खोलकर खड़े यों
जैसे हमीं ही स्वाती का नीर बन गए हैं

सबके बदन को ढकने के ही लिए जहाँ में
बस द्रौपदी का केवल हम चीर बन गए हैं

इतना सितम है ढाया हमने स्वयं के ऊपर
अब तो सितमगरों के हम पीर बन गए है

तासीर नापने में सारे जहाँ की साथी!
लगता है हम स्वयं ही तासीर बन गए हैं

सब की तृषा मिटा कर खुद रह गए हैं प्यासे
सूखी हुई नदी के हम तीर बन गए हैं। ●

ग़ज़ल

सिन्धु-सी खारी सदा है ज़िन्दगी
गगन-सी भारी सदा है ज़िन्दगी

पर तजुर्बेकार कहते हैं यही
एक गुलकारी सदा है ज़िन्दगी

ज़िन्दगी का ज़हर पीने के लिए
एक लाचारी सदा है ज़िन्दगी

शूल क्या फूलों से खाती ज़ख्म है
कितनी सुकुमारी सदा है ज़िन्दगी

मौत प्यारी ज़िन्दगी को है न, पर–
मौत को प्यारी सदा है ज़िन्दगी। ●

फूल भी हैं खार से हमें

खुशबू नहीं तो फूल भी हैं खार से हमें
रहवर भी लग रहे हैं गुनहगार से हमें।

अब आदमी का कोई भी मतलब नहीं रहा
हमदर्द लग रहे हैं खरीदार से हमें।

हर हादसा देने लगा है दिल को अब सुकून
जज्बात भी लगने लगे अखबार से हमें।

सारे शहर में आज मुखौटों का चलन है
खंजर भी लग रहे किसी रुखसार से हमें।

ताबूत में माहौल ममी सा हुआ है कैद
लगते हैं गोस्तखोर मददगार से हमें।

आँखों पे आज स्वार्थ का चश्मा लगा हुआ
बौने भी लग रहे कुतुबमीनार से हमें।

हर नाखुदा ने कालिमा बाँटी है इसलिए
साहिल भी अब लगने लगे मँझधार से हमें।

आए जो आयाराम गयाराम चल पड़े
सब लग रहे हैं चीन की दीवार से हमें। ●

ग़ज़ल

कोई नहीं है साथ बस तन्हाइयाँ रहीं
हर रात साथ अपनी ही अँगड़ाइयाँ रहीं

अपने को उजालों में कहो कैसे नापता
मुझसे बहुत बड़ी मेरी परछाइयाँ रहीं

तकदीर कैसी मैं यहाँ लाया हूँ लिखाकर
इस ज़िन्दगी में हमसफर रुस्वाइयाँ रहीं

गिर-गिर के सँभलता रहा जीवन में सर्वथा
कारण कि दृष्टि में सदा ऊँचाइयाँ रहीं

तह तक समन्दर की मैं उतरता सदा रहा
कविता में तभी तो सदा गहराइयाँ रहीं। ●

ग़ज़ल

ऐ दोस्त ! यहाँ लाती हर भोर कयामत है।
हर शाम यहाँ आती बन कर नई शामत है।।

जो जुल्म अँधेरे के उनकी न करो चर्चा
हर रोशनी से लगता अपनी तो अदावत है।

चालो-चलन जो बदले इसका न मुझे गम है
पर गम यही कि लगती बदली हुई कुदरत है।

अब आदमी की बातें करता नहीं है कोई
हैवानियत की सब पर ये कैसी हरारत है।

कमबख्त दिल तो जाने कब का ही मर चुका है
अब अक्ल की ही देखो हर ओर शरारत है।

दीवार फर्क की नित उठती ही जा रही है
पर सर पे दीख पड़ती कोई न आज छत है।

तूफान उठ रहे हैं हर इक दिशा से कितने
जज्बात की शमा अब लाचार हो के नत है।

सारे जहाँ के मालिक अब माफ मुझको करना
अपनी कलम मचलती करने को बगावत है। ●

यह परेशानी तो है

मानिए, मत मानिए जब शब्द है मानी तो है
खेत सूखे हों भले अखबार में पानी तो है।

भरे हैं गोदाम फिर भी भूख से मरने का जिक्र
और उस पर भी यकीं की बात, नादानी तो है।

देख कर मत देखिए, सुन कर न कहिए, है सुना
आजकल दिन को बताना दिन, परेशानी तो है।

अब डकैतों से किसी की जान पर बनती नहीं
रहबरी के खेल में इतनी मेहरबानी तो है।

लोग वादों पर, अदा पर, जुबां पर कुर्बान हैं
कुछ न हो चाहे भले, तकरीर तूफानी तो है।

दोस्त-दुश्मन में फरक करना नहीं आसाँ रहा
सोचकर घर खोलिए आवाज पहचानी तो है।

इस सियासत को जरा दिल से समझिए दोस्तों
हाल की क्या बात माजी अपना लासानी तो है।

डाकुओं में नाम जिनका आज तक है चल रहा
फिर भी चुन कर वही आते यह परेशानी तो है। ●

ग़ज़ल

जब से पत्थर मुस्कराने लग गए हैं
लोग डर कर गीत गाने लग गए हैं।

अब कहाँ जिक्रे - हिफाज़त का सवाल
भेड़िए आँसू बहाने लग गए हैं।

हर तरफ दहशत का सन्नाटा यहाँ
अम्न का मतलब लगाने लग गए हैं।

दूध धोए आप हैं, ऐ हुक्मरां
(पर) आइने से मुंह छिपाने लग गए हैं।

सुन रहे हैं मयकदे को आज कल
लोग देवालय बताने लग गए हैं।

चीर कर अब दिल दिखाना व्यर्थ है
लोग नकली दिल लगाने लग गए हैं।

जिनका कोई है नहीं अस्तित्व कुछ
वे 'अरुण' को आजमाने लग गए हैं। ●

मेरी ग़ज़ल

बात सच है आदमी की साँस है मेरी ग़ज़ल
आदमीयत का दिली उच्छ्वास है मेरी ग़ज़ल।

इस धरित्री की तरह वह सहनशीला जन्म से
इस धरा की बात क्या आकाश है मेरी ग़ज़ल।

आदमी के दर्द के ही वह चतुर्दिक घूमती
संवेदनाओं का सही अहसास है मेरी ग़ज़ल।

जिंदगी की बीन की झंकार से निकली हुई
जैजैवन्ती राग का उल्लास है मेरी ग़ज़ल।

आने वाला कल जहाँ में और भी सुन्दर बने
बस उसी का रश्मिमय आभास है मेरी ग़ज़ल।

दूध सुविधा का यहाँ पीकर के जो फुफकारते
उनके शीशों पर किसन का रास है मेरी ग़ज़ल।

दोस्त! मैं संक्षेप में परिचय स्वयं का दे रहा
राम के इस देश का इतिहास है मेरी ग़ज़ल। ●

ग़ज़ल

नज़र से नज़र टकरा गई तो क्या होगा
ज़िन्दगी गर लड़खड़ा गई तो क्या होगा।

न कुछ सोच कि सूरज हुआ है क्यों काला
सहर खुद ही पथरा गई तो क्या होगा।

न और अफसाने कहो सियासत के
शर्म को भी शर्म आ गई तो क्या होगा।

जो भी रहवर हैं वहाँ 'अरुण' को न ले जाना
उनकी महफिल में हँसी आ गई तो क्या होगा।। ●

फिर वही तिकड़म वही पूरा कहर है दोस्तो
जाने कैसे जी रहा अपना शहर है दोस्तो।

दिख रहे चेहरे वही चेहरे लगाए कुछ नए
बन गए सारे चलन बस पोस्टर हैं दोस्तो।

अब न कोई भी शमा देता यहाँ है रोशनी
हो रहा बदलाव यद्यपि रात भर है दोस्तो।

यह रवायत मंचबाजों की चलेगी सर्वदा
लग रही पूरी इमारत खण्डहर है दोस्तो। ●

ग़ज़ल

कितने चोर लबार हमारी बस्ती में,
घुस आए बटमार हमारी बस्ती में।

जो भी हैं खुद्दार मौन सब साधे हैं,
मुखर हुए गद्दार हमारी बस्ती में।

सत्य बोलना अब गुनाह है बहुत बड़ा,
झूठों का अधिकार हमारी बस्ती में।

माली जो भी हुए उजाड़ा बगिया को,
अब केवल हैं खार हमारी बस्ती में।

अँधियारा जो बेच रहे वे पूजित हैं,
किरण हुई बेजार हमारी बस्ती में।

दो कौड़ी भी नहीं आदमी की कीमत,
तिकड़म का व्यापार हमारी बस्ती में।

खाल भेड़ की ओढ़ भेड़िए घूम रहे,
इनकी ही सरकार हमारी बस्ती में।

निर्वासित हो गए राम, पर होता है,
रावण का शृंगार हमारी बस्ती में।

सुन पड़ते हैं बोल नहीं रामायण के
चलते वी. सी. आर. हमारी बस्ती में।। ●

दिल में वह चिंगारी रख

इस माटी से यारी रख
दिल में वह चिन्गारी रख
अगर आदमी बनना चाहे
तो पीड़ा से यारी रख
जो घुस पैठ करें सीमा में
उनके लिए दुधारी रख
आस्तीनों में छिप जो डसते
उनके लिए पिटारी रख
जो आतंकवाद फैलाएँ
उनके लिए सुपारी रख
हर प्राणी ईश्वर की प्रतिमा
दिल में एक पुजारी रख
कदम सफलता खुद चूमेगी
मत मन में लाचारी रख
क्षण – भंगुर जीवन की कलिका
मरने की तैयारी रख। ●

युगपुरुष - पर्व

प्रश्न नहीं है, इस दुनिया में कितना कौन बड़ा है।
प्रश्न यही है – किस ज़मीन पर कैसे कौन खड़ा है?

भगवान् शंकराचार्य के प्रति

किस सम्बोधन से कहो देव, हम तुम्हें पुकारें युगाधार।
निःशब्द शब्दपतिं, तपः पूत, हे पुरुष सनातन, नमस्कार।।

युग जड़ता के सम्मोहन से
तम का वितान था रहा तान
जाने किस भ्रम के सागर में
खो गया लोक का था विहान
संवेदन शीश पटकता था
प्रज्ञा ठुकराई जाती थी
आस्था अपने ओठों को सिल
शोणित के अश्रु बहाती थी

उस समय तुम्हीं अवतरित हुए बन कर करुणा की सुधा धार।
निःशब्द शब्दपति, तपः पूत, हे पुरुष सनातन, नमस्कार।।

तुम मोक्ष मंत्र से तिर-तिर कर
उतरे अनन्त से इस भू पर
जागृति-वीणा की झंकृति वन
तुम गूँज उठे हे चिर सुन्दर

युग के कर्दम में कमल सदृश
तुम बिहँस पड़े ऐसे अनूप
मानो वसन्त दे गया सरस
जीवन पतझड़ को नया रूप

हर स्वर में दीपक राग जगा पी गए युगों का अंधकार।
निःशब्द शब्दपति तपःपूत हे पुरुष सनातन नमस्कार।।

अद्वैत ब्रह्म के हे द्रष्टा
हर शब्द तुम्हारा मंत्र बना
हे शिल्पि! तुम्हारे श्लोकों से
शोभा का रश्मि-वितान तना

हर सृजन ऋचाओं सा पावन
चन्दन सा अर्थ समेटे है
हे वाग्मि! तुम्हारी पंक्ति-पंक्ति
युग का विश्वास लपेटे है

तुम दिग्वलयों पर शोभित हो, ले कनक विभाओं का सिंगार।
निःशब्द शब्दपति, तपःपूत, हे पुरुष सनातन नमस्कार।।

साकार हिमालय के प्रतीक
क्षीरधि उर्मिल के महाज्वार
हे चूड़ोज्ज्वल बैकुण्ठ परम
हे नभगंगा से चिर अपार

हे हिम-शिखरों के शुभ्र लोक
हे आर्ष मनीषी यशः काय
अब तुम्हीं कहो हे वेद रूप
पद-पूजन का क्या है उपाय

स्वीकार करो फिर भी हे शिव युग-युग तक युग का नमस्कार।
निःशब्द शब्दपति तपःपूत, हे पुरुष सनातन नमस्कार।। ●

भगवान् परशुराम का आव्हान

हे कुठारधारी युग जेता !
मांग रहा यह देश परसुधर तुम सा निस्पृह निश्छल नेता।।

तुम प्रकटे उस तम के युग में, जब पथ से शासक थे भटके।
संस्कृति के आलोक वृक्ष पर डाल-डाल चमगादड़ लटके।।
इस स्वदेश के नन्दन वन में था गुंजरित खलों का कलरव।
पूरा देश मसान बना था जन-गण जैसे लावारिस शव।।
दफन हो गई थी दलदल में जीवन जीने की आकांक्षा।
अट्टहास में सहस वाहुओं के कम्पित थी पावन वांक्षा।।
उसी समय अवतरित हुए तुम बन कर नूतन क्रांति प्रणेता।
हे कुठारधारी युग जेता।।

अक्षय तिथि बन गई तृतीया शुक्ल पक्ष बैसाख सुहावन।
वहने लगी बयार चंदनी स्वस्ति मंत्र गूँजे फिर पावन।।
कार्तवीय अर्जुन का आसन अनायास ही डगमग डोला।
लगा कि मानों प्रलयंकर ने नेत्र तीसरा फिर से खोला।।

योग-क्षेम शोषित जनगण के जो थे निर्वासित मुस्काए।
स्वर्गलोक से इन्द्रादिक सुरवृन्दों ने थे सुमन लुटाए।।
विष्णु तेज लेकर तब उतरे शस्त्र-शास्त्र के हे अध्येता।
हे कुठारधारी युग जेता।।

तुम पतझड़ पर ऋतुपति बन कर आये युग – शृंगार सजाने।
उतरे राष्ट्रमंच पर भृगुवर मृत स्वराष्ट्र को सुधा पिलाने।।
हर अनीति पर तुमने बल भर अपना चरण-प्रहार किया था।
मानवता के लिए न जाने कितना तुमने गरल पिया था।
अविवेकी युग जान न पाया अन्तर-पीड़ा देव तुम्हारी।
फिर भी डिगे नहीं लक्ष्यों से हे युगनायक हे असुरारी।।
तुम को पाकर धन्य हो गया त्रस्त शोषकों से युग त्रेता।
हे कुठारधारी युग जेता।।

तुम्हें कहे उद्वेग प्रकृति का या कि क्षोभ जनगण का बोलें।
तुम्हीं बताओ कौन तुला है जिस पर हे प्रभु तुमको तोलें।
सचमुच तमावृत्त भारत के तुम मंगल आलोक वृक्ष थे।
टिक न सके तम के आराधक देव तुम्हारे रण समक्ष थे।।
नाथ तुम्हें क्या सम्बोधन दूँ तुम तो निरुपमेय हो भृगुपति।
तुम युग-युग की प्रगति सुगति हो जीवन की सार्थक यति गति मति।।
युग–युग तक तुमको अर्पित है युग की श्रद्धा हे युग जेता।।
हे कुठारधारी युग जेता।।

फिर से आज वही युग आया उछल रहे बहु सहसवाहु हैं।
हर सुवाहु पूरा निर्भय है दर-दर पर मारीच राहु हैं।।
हर जमदग्नि आज सहमा है जम्बुकवंशी आज प्रबल हैं।
ओठ सिले हैं आज सत्य के धूर्त प्रपंची बने सवल हैं।।
वोल न सकता अव स्वदेश की दीन दशा कितनी विचित्र है।
भ्रष्टाचार और घोटाला अव जन प्रतिनिधियों का चरित्र है।।
नेता–मेध यज्ञ फिर कर दो, हे युग पुरुष, युगीन विजेता।
हे कुठारधारी युग जेता।। ●

तुलसी के प्रति

हे कविर्मनीषी यशः काय नवयुग का नमन करो स्वीकृत।

जग की अज्ञान तमिस्रा में
तुम आए बन कर ज्ञान सूर्य।
पाकर तुमको नव संसृति का
बज उठा अचानक ज्योति तूर्य।

हे चिर अव्यय, हे चिर नवीन
हे नव संसृति के सृजनहार।
हे चिर अकलुष, हे चिर महान
हे काव्य कलाधर नमस्कार।
हो उठी तुम्हारी वाणी से माँ वाणी की वीणा झंकृत।

तुम चित्रकार थे मानव के
अनुचरी तुम्हारी थी भाषा।
ओ काव्य-गगन के पूर्ण इन्दु
तुम थे कविता की परिभाषा।

जन-जन की पीड़ा पीने को
तुलसी तुमने अवतार लिया।
जाने कितनी अहल्याओं का
तुमने ही तो उद्धार किया।
पी गये हलाहल तुम युग का पर जग को लुटा गये अमृत।

ओ रत्नदीप तुमको पाकर
हो गई धन्य भाषा हिन्दी
उसके सुभाल पर कविता की
तुमने ही जड़ी ज्योति बिन्दी

लघु देश काल की सीमा में
हम तुम्हें बाँध क्या पायेंगे ?
ओ प्राण! तुम्हारा गौरव अब
ये चाँद सितारे गाएँगे।
प्रति वाक्य बन गया जीवन में वरदान सदृश पावन निःसृत।

चिर ऋणी रहेगी मानवता
जन-जन में रमे रहोगे तुम।
जब तक नभ में हैं सूर्य-चन्द्र
जाओ कवि अमर रहोगे तुम।

है काव्य तुम्हारा कवि-कुल-गुरु
पावन गंगा-जल के समान।
धरती नव जीवन माँग रही
कर दो नव युग को अमिय दान।
फिर एक बार जन मानस की हृदतंत्री को कर दो झंकृत।
हे कविर्मनीषी यशः काय नवयुग का नमन करो स्वीकृत।। ●

अजातशत्रु केशव

समझ न पाता दीप्तिवरण किस भाषा में मैं बोलूँ,
ऐसी कहाँ तुला है जिस पर 'केशव' तुमको तोलूँ।
तुम हो सीमाहीन, छन्द सीमा में कैसे बाँधूँ,
ओ युग के वैकुण्ठ! थाल कुण्ठा का कैसे खोलूँ।।

कहता युग तुम एक भभक हो रवि की दिव्य किरण के,
तुम हो स्वर्गिक रत्न भारती के ही अलंकरण के।
तुम प्रत्यूष प्रहर की आशा या चिर आत्म पिपासा,
तुम हो जय उद्घोष अलौकिक वैदिक पुरश्चरण के।।

तुमको पाकर लगा हिमालय-सा विश्वास मिला था,
सीमा बंध राष्ट्र को फिर से नव आकाश मिला था।
पतझड़ पर मधुमास हँसा था, तम पर ज्योति हँसी थी,
देकर नवल-संस्करण युग को नव इतिहास मिला था।।

क्या पीड़ा माटी की होती तुमने इसको जाना,
भरत देश की मूल अस्मिता को तुमने पहचाना।
चलते रहे अग्नि पथ पर नित अग्नि वर्ण युगद्रष्टा,
तुमने युग के काल-धनुष पर आत्म-तेज-शर ताना।।

हतप्रभ युग हो गया तुम्हारा देख चरित्र निराला,
कहा किसी ने रुद्र, किसी ने शिव-त्रिनेत्र की ज्वाला।
कहा किसी ने तुम्हें हलाहल युग का पीने वाला,
कहा किसी ने युग संन्यासी तपःपूत मतवाला।।

कहा किसी ने काल वक्ष पर तुमको ताण्डव नर्तन,
कहा किसी ने तुमको विक्रम का युगीन आवर्त्तन।
"जाकी रही भावना जैसी" वैसा उसने देखा,
सचमुच 'केशव' थे कलियुग में तुम त्रेता के दर्शन।।

रहे अजातशत्रु तुम 'केशव' हे युग-वंद्य मनस्वी,
युगादर्श, आत्मोत्कर्ष के तोरण द्वार, तपस्वी।
विश्रृंखलित जाति को तुमने संघबद्ध कर डाला,
युगाधार युग-प्रभा, यती, अव्यय, युग शिल्पि यशस्वी।।

जिधर बढ़े युग-चरण तुम्हारे उधर बढ़ा युग सारा,
जिधर तुम्हारी दृष्टि उठी बस युग ने उधर निहारा।
अरे भगीरथ जिधर तुम्हारा युग-रथ बढ़ा अबाधित,
हहराती बस उधर चल पड़ी जन - गंगा की धारा।।

जयति राष्ट्र का गोवर्द्धन हे कृष्ण उठाने वाले,
जयति जागरण-पांचजन्य हे व्रती, बजाने वाले।
जयति विगत गौरव का गीता - ज्ञान सुनाने वाले,
हिन्दु-राष्ट्र का नन्दिघोष रथ वीर चलाने वाले।।

जय विराट, जय चिर असीम, जय तरुणसिंह-अँगड़ाई,
पाकर तुम्हें हिमालय की भी बढ़ी और ऊँचाई।
देख भव्य गाम्भीर्य हिन्द सागर भी कुछ गहराया,
प्रखर हुए दिननाथ उषा भी आशा से मुसकाई।।

वामन शब्द कोष है मेरा तुम विराट हे स्वामी।
और कल्पना तम में भटकी तुम उदयाचल गामी।
फिर भी भाव सुमन जो कुछ है युग चरणों में अर्पित,
मैं क्या युग ही कहता—'केशव नमो नमामि नमामी'।। ●

अद्भुत संगम राणा प्रताप

तीनों स्वर्गिक सरिताओं के संगम को कहते हैं प्रयाग।
जिसके पावन सिकता तट पर गूँजा संस्कृति का अमर राग।
उस भाँति जहाँ पर स्वाभिमान राष्ट्राभिमान सँग शौर्य-ताप।
मिलकर करते अद्भुत रचना, वह संगम है राणा प्रताप।।

राणा प्रताप है नाम नहीं केवल दैहिक सम्बोधन का।
बन गया आज है वह प्रतीक जीवन के नव उद्‌बोधन का।
वह एक प्रभा का पुंज कि जिससे हर तम होता क्षार-क्षार।
वह एक जागरण मंत्र और है स्वतंत्रता की युग-पुकार।।

वह एक विदेशी सत्ता की छाती पर भीषण पद-प्रहार।
भारत माता के अर्चन में वह है अलबेला सुमन-हार।
वह मर्यादा पुरुषोत्तम का है एक नवल विजयाभिमान।
वह परशुराम की उग्र ज्वाल बिम्बित जिसमें हिन्दोस्थान।।

वह शंकर का तीसरा नयन चण्डी की पैनी खड्ग-धार।
चाणक्य व्रती का लेकर प्रण आया करने माँ का सिंगार।
राणा केवल है व्यक्ति नहीं वह है भारत ही मूर्तिमान।
राणा में ही प्रतिबिम्बित है इस आर्य धारा का स्वाभिमान।।

जिसके उत्तप्त शौर्य-बल का युग-शौर्य कर सका नहीं माप।
ऐसा वह अपरम्पार व्रती, युग–वंद्य रहा राणा प्रताप।
सचमुच रघुवंश–शिरोमणि सा राणा जन युद्ध प्रणेता था।
वनवासी भीलों दलितों का वह निर्विवाद जन-नेता था।।

जिसने अरि-शोणित से लिख दी आजादी की पावन गाथा।
जिसके प्रताप से झुका रहा अकवर का गर्वोन्नत माथा।
कहते किसको आत्माभिमान राणा प्रताप से यह जानो।
कहते किसको राष्ट्राभिमान उस शार्दूल से पहचानो।।

ऐसे ही अनल-सपूतों से भारत अब तक गतिमान वना।
उनके पावन उत्सर्गों से अपराजित हिन्दुस्थान बना।
वह आत्मव्रती संकल्प सिद्ध अव्याहत सतत् विजेता था।
कलियुग की काली छाती पर वह दीप्तमान युग त्रेता था।।

भूलना उसे है आत्मघात, भूलना स्वयं को छलना है।
उसके शोणित सिंचित पथ पर हर राष्ट्रव्रती को चलना है।
अपनाकर उसके महादर्श भारत को गौरव-धाम करें।
वह युग प्रणम्य है सिंह–पूत, युग-युग तक उसे प्रणाम करें।। ●

सरदार वल्लभ भाई पटेल के प्रति

हे लौह पुरुष युग नमस्कार

खण्डित था भारत टुकड़ों में तुमने ही एकाकार किया।
पा गया राष्ट्र अभिनव स्वरूप तुमने दृढ़तम आधार दिया।
हे नवल मंत्र द्रष्टा युग के फूँका था ऐसा मोक्ष-मंत्र।
उभरा स्वदेश वन दीप्त विम्व मुस्काया नव भारत स्वतंत्र।
मिट गई कालिमा युग-युग की हो गई प्रवाहित प्रभा धार।।
हे लौह पुरुष युग नमस्कार।।

तुम माली थे इस उपवन के दृढ़ता में वज्र समान रहे।
थे शंकर के तीसरे नयन तुम अपने ही उपमान रहे।
हैदराबाद, जूनागढ़ सँग केसर की मुसकायी क्यारी।
तुमने बनकर निर्वेद पिया विष और अमृत वारी-वारी।।
संगठन शक्ति के हे शिल्पी, था प्रखर तेज तुममें अपार।।
हे लौह पुरुष युग नमस्कार।।

चाणक्य रहे नूतन युग के तुम असरदार सरदार रहे।
युग राजनीति के दलदल में तुम वल्लभ अपरम्पार रहे।
हो गया धन्य गुर्जर प्रदेश हो गई धन्य भारत-माटी।
पाकर तुमको मुसकरा उठी राणा की वह हल्दीघाटी।
ऊँचाई हिमगिरि ने पायी तुम सचमुच थे त्रेतावतार।।
हे लौह पुरुष युग नमस्कार।।

असमय में काल प्रहारों ने तुमको हा ! कैसे लिया छीन।
रोयी गंगा होकर विवर्ण प्यारा स्वदेश बन गया दीन।
भारत माँ तुम्हें पुकार रही फण उठा रहे विषधर भुजंग।
आतंकवाद के खल निशिचर करते स्वदेश के अंग-भंग।
हे गोवर्द्धनधारी आओ फिर पांचजन्य गूँजे अपार।।
हे लौह पुरुष युग नमस्कार।।

तुमको हम क्या सम्बोधन दें, बोलो कैसे आह्वान करें ?
सच्चे अर्थों में इस भू को हम कैसे हिन्दुस्थान करें ?
सीमा की लक्ष्मण रेखा का दश-शीश उड़ाता है खिल्ली।
चंगेजों की खूंरेज़ी से सहमी-सहमी लगती दिल्ली।
हे चिर विराट हे व्यालराट् अब अर्पित केवल अश्रुधार।।
हे लौह पुरुष युग नमस्कार।। ●

राष्ट्रव्रती वीर सावरकर

ओ अखण्ड भारत के स्रष्टा क्या कह तुम्हें पुकारें।
किस दीपक से कहो तुम्हारी हम आरती उतारें
किन पुष्पों को दिव्य चित्र पर हे चाणक्य चढ़ाएँ
किन शंखों घड़ियालों को मंदिर में आज बजाएँ

तभी अन्तरात्मा से गूँजी यह अमोघ युग-वाणी
युग-युग का तम हरा, हो गई स्वांस-स्वांस कल्याणी
यहाँ नहीं मुरझाने वाले पुष्प चढ़ाए जाते
यहाँ रक्त से सने सर्वदा शीश चढ़ाए जाते

यहाँ शंख घड़ियाल कभी भी नहीं बजाए जाते
रण-सिंहों के यहाँ तीक्ष्णतर खड्ग लड़ाए जाते
यहाँ अर्चना में कोई भी श्लोक न गाए जाते
बस स्वदेश के गौरव हित रण प्रण दुहराए जाते

राष्ट्रव्रती बलिदान तुम्हारे, कलम न लिख पाएगी
उसके लिए शारदा कोई ही लिखने आएगी
अर्पित कर दी मातृभूमि हित, निज अनमोल जवानी
फ्रेंच सिन्धु पर लिख डाली साहस की अमर कहानी

तज जीवन के सुख-वैभव शूलों पर सेज बिछाई
हर स्वातंत्र्य समर में तुमने की बढ़ कर अगुवाई
राष्ट्र–धर्म हित दशकों तक जीवन कारा में बीता
फिर भी देश-प्रेम का प्याला रंच हुआ कब रीता

तुमने हिन्दु-धर्म की रच दी अविनश्वर परिभाषा
राष्ट्र-चेतना सदा जगाती रही तुम्हारी भाषा
भारतमाता के मंदिर के हे युग-जेय पुजारी
युग संवाहक, युग उद्‌बोधक राणा से व्रतधारी

अण्डमान का सेलुलर बंदी गृह दे रहा गवाही
डिगे नहीं रौरव पीड़ा सह, हे रणव्रती सिपाही
तुमने जिस अखण्ड भारत का स्वर्णिम स्वप्न सँजोया
सुविधाभोगी नेताओं ने अनायास ही खोया

कटा दाहिना अंग वाम भुज विकृत हो गया भारत
लगता है अब भारत में ही भारत हुआ नदारत
कश्यप ऋशि की तपस्थली कश्मीर हो गया आहत
मान सरोवर सँग पावन कैलास हो गया अपहृत

तुम रटते रह गए सर्वदा यह कैलास हमारा
मान सरोवर ऋषि मुनियों का है अधिवास हमारा
एक ओर नापाक पाक है एक ओर है अजगर
घर में भी फूफकार रहे हैं ये आतंकी विषधर

जाने किस भ्रम से हम चीनी अजगर से भय खाते
ये पुरुषत्व हीन नेतागण व्यर्थ हमें भरमाते
भारत मां की कोख तुम्हीं से धन्य हुई व्रतधारी
तुम्हें कहे रघुवर पुरुपोत्तम या गोवर्धनधारी

एक ओर बलिदान दूसरी ओर देश यह खण्डित
अबतक स्वप्नों का वह भारत हुआ न वीर! अखण्डित
अभी अयोध्या मथुरा के सँग हुई न अपनी काशी
तब कैसे श्रद्धांजलि दें हम पामर भारतवासी

अपने कंपित स्वर से हम सब श्रद्धांजलि देते हैं
भारत को अखण्ड करने का यह युग प्रण लेते हैं
क्षमा करो इस हिन्दु जाति को हे युगवंद्य मनस्वी
स्वप्न करेंगे पूर्ण तुम्हारा वर दो यही तपस्वी।। ●

कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति

हे मानवता के सृजनहार!

था काल रात्रि का प्रथम प्रहर।
चलते थे तम के तीर प्रखर।
स्याही गहराई थी दुस्तर।
मुखरित था सन्नाटे का स्वर।।

जाने किस गज ने डाला मथ।
मानस उद्विग्न बने तट श्लथ।
कंटकाकीर्ण था भावी पथ।
ठहरा था जड़वत गति का रथ।।

मेघाडम्बर था घनाकार।
गर्जन करता था वार-वार।
युग-तरणि गई थी दाँव हार।
थी वक्त नदी की काल-धार।।

हँसता था वधिक खड़ा खिल-खिल।
शर से आहत था क्रौंच विकल।
युग-वाल्मीकि था मौन अचल।
कोई न कहीं कुछ थी हलचल।।

हो गया गलत हर समीकरण।
तव धारण कर नव अलंकरण।
आया सुन्दरतम दीप्त वरण।
बीसवीं सदी का ज्योति चरण।।

युग अँधियारे का सैन्य भगा।
युग का सोया संकल्प जगा।
उस क्षण मानो बस यही लगा।
प्राची में कोई विम्ब उगा।।

धीरे-धीरे उतरा प्रकाश।
पंखुड़ियों पर छाया सुहास।
लखकर युग-रवि का नव विकास।
चैतन्य कर उठा मदिर रास।।

लेकर भू माँ का प्यार नया।
उपनिषदों की मणिमय संज्ञा।
आया यह काल जयी रवि-कवि।।
ले वेद ऋचाओं की प्रज्ञा।।

युग बोल उठा यह युग-रवि है।
धरती की करुणा का कवि है।
अँधियारे पर ज्योतिर्पवि है।
सारस्वत-यज्ञों की छवि है।।

सचमुच कवि तुम युग जेता हो।
सुन्दरतम शिखर सृजेता हो।
अक्षय यश सौरभ क्रेता हो।
युग-वक्षस्थल पर त्रेता हो।।

तुमने जाना केवल जलना।
एकाकी ही पथ पर चलना।
अपनी उष्मा से खुद गलना।
तुम हो रहस्य तुम हो घटना।।

जीवन भर गरल रहे पीते।
तम-नयन किरण-कर से सोते।
छलके जी भर जब तक जीते।
फिर भी कवि! नहीं हुए रीते।।

तुम पर अर्पित हर गंध-धार।
ओ मानवता के सृजनहार।
हे सावन की पहली फुहार।
स्वीकार करो युग-नमस्कार।।

कर हर रहस्य का अनावरण।
लिखता मणियों के संस्करण।
उतरा प्राची से दीप्त-वरण।
बीसवीं सदी का ज्योति चरण।। ●

तुमको पाकर हम हुए धन्य

जब भारत के नभ मण्डल में छाया घनघोर अँधेरा था।
खूनी वैतालों ने डाला इस स्वर्ग धरा पर डेरा था।
हम अपनी दारुण पीड़ाएँ मुँह खोल नहीं कह सकते थे।
सहते थे डंक विच्छुओं के पर आह नहीं कर सकते थे।।

ऐसे में तुम अवतरित हुए ले महाशक्ति का बिम्ब प्रखर।
टूटने लगी सब छलनाएँ जनगण ने पाया नूतन स्वर।
यह सच है राष्ट्र गगन में जब तम का बादल दल छाता है।
जब क्रूर वृत्रासुर शोषण का आकर युग को धमकाता है।।

अनुराग राष्ट्र संस्कृति का जब अनजाने ही मर जाता है।
ऐसे में कोई वीर व्रती सावरकर बन कर आता है।
जिस ओर तुम्हारी दृष्टि उठी, चल पड़ी जवानी उसी ओर।
राष्ट्रीय-भाव का ज्वार उठा, दिख पड़ा न जिसका ओर छोर।।

बलिदान तुम्हारा ऐसा था "भूतो न भविष्यति" युग बोला।
वीरोद्‌घोष सुन-सुन करके लंदन का आसन तक डोला।
पापिनी टेम्स (तमस) भी सहम गई हो गया मंद उसका प्रवाह।
पीपल पत्ते सा काँप उठा यूनियन जैक हो हतोत्साह।।

परिवार और धन-धाम सभी माँ की वेदी पर अर्पित कर।
तुम युगादर्श बन गए वीर अपना सर्वस्व समर्पित कर।
जो लक्ष्य तुम्हारा था उसको नेता सुभाष ने भी माना।
अभिनव चाणक्य तुम्हें कह कर इस महादेश ने पहचाना।।

चितपावन कुल अवतंस यशी तुमको पाकर हम हुए धन्य।
अपने उपमान तुम्हीं केवल हे युगादर्श अव्यय अनन्य।
पर लाल गुलाव लगाकर जो चलते कुछ छली प्रवंचक थे।
कुछ अजाधर्म पालन करते, जो हतभागे युग वंचक थे।।

वे सवके सव भिक्षापायी करते थे तुमको अस्वीकार।
वे क्या समझें होती कैसी है तलवारों की तीक्ष्णधार।
होता जव युग का सिन्धुमथन तुम सा ही शंकर आता है।
करता है गरल पान फिर से वह अजर अमर वन जाता है।।

शास्त्रों की चर्चा, बिना शस्त्र रक्षण के सदा असम्भव है।
गीता के पथ पर चलने से स्वातंत्र्य योजना सम्भव है।
ऐसा ही ले आदर्श धवल तुम डिगे नहीं अपने प्रण से।
गूंजा "सावरकर धन्य-धन्य" इस वीर धरा के कण-कण से।।

दो-दो कालापानी की वह दारुण यातना सही तुमने।
पर मिला न ऐसा राष्ट्रव्रती देखा इतिहासों में हमने।
आओ फिर से हे चिर अजेय, है अस्त-व्यस्त यह लोकतंत्र।
संक्रान्ति काल में पीट रहा अपना सिर यह भारत स्वतंत्र।।

मेरे सावरकर अव आओ भू - मां की आर्त पुकारों में।
मेरे सावरकर अव प्रकटो भीषणतम हाहाकारों में।
मेरे सावरकर निकल पड़ो युग के दाहक अंगारों में।
मेरे सावरकर निखर पड़ो केसरिया रण शृंगारों में।।

सावरकर आज प्रतीक वने भावी भारत अरमानों के।
आत्मा के विजयी गानों के युग के अनन्त वलिदानों के।
जीवन के कर्दम में खिलने वाले सरसिज मुस्कानों के।
संस्कृति के ऊँचे शिखरों से अव्याहत स्वर्ण उड़ानों के।।

सच्ची श्रद्धांजलि यही, तुम्हारा स्वप्न यथार्थ वनाएंगे।
हम इस खण्डित भारत को फिर युगजयी अखण्ड वनाएंगे।
कावुल गांधार देश तक जव केसरिया ध्वज फहराएंगे।
उस मानसरोवर के तट पर फिर वेद मंत्र दुहराएंगे।। ●

राष्ट्र संन्यासी डॉ. राम मनोहर लोहिया के प्रति

वैराग्य त्याग की विमल मूर्ति!

ओ चिर अतृप्त चिर विद्रोही, ओ इंकलाव की अभिनव लय।
वैराग्य-त्याग की विमल मूर्ति, जन पथ के राही चिर निर्भय।।

तुम प्रकटे एक बिम्ब बनकर, इस राजनीति के अम्वर में,
दाहक उत्तप्त सृजनधर्मी, वस क्रान्ति-राग था हर स्वर में।
अंगारों से खेले हरदम, आजीवन पीते रहे गरल,
शिव स्वयं चकित हो गए देख, कैसी जड़-चेतन में हलचल।
ले एक हाथ में गरल, एक में अमृत, पिया वारी-बारी,
युग बोल उठा यह क्या ? यह क्या ? किस महाक्रान्ति की तैयारी ?
हे आदर्शों के अभय सेतु, बन गए राम के अनुयायी,
जीवन भर औघड़ रूप रहे, हे वैरागी ! हे विपपायी।
अपने असीम श्रद्धावल से, हे दृढ़ी ! बन गए मृत्युंजय।
ओ चिर अतृप्त चिर विद्रोही........।।

दोनों कर में अंगार लिए, अन्तर में लेकर सृजन आग,
अलमस्त फकीरी जीवन था, आरत जन के भैरवी राग।
हे अभिनव विश्वामित्र, नहीं उपमान तुम्हारा मिल सकता,
कितनी पीड़ा थी संस्कृति की, कोई अनुमान नहीं सकता।
शोषित जन की तुम थे पुकार, दलितों के युग आदर्श बने,
अपने प्रचण्ड मेधा बल से तुम सचमुच भारतवर्ष बने।
तुमको लखकर आभास हुआ, चाणक्य स्वयं अवतरित हुए,
हे यशी तुम्हारी हुंकृति से सब दैन्य भाव भी क्षरित हुए।
कामना यही है सिंहपूत ! आदर्श तुम्हारे हों अक्षय
ओ चिर अतृप्त चिर विद्रोही..........।।

भगवान राम भी जिस भू पर, बनवास काल में आए थे,
उस तीर्थ शिरोमणि चित्रकूट में, तेरह वर्ष बिताये थे।
जिसकी गोदी में दर्शन पा, तुलसी ने की मानस रचना,
वह चित्रकूट तेरे प्रयत्न से, फिर श्रद्धा का सेतु बना।।
रामायण मेला करने की, थी भव्य योजना बनवाई,
एशिया नहीं, पूरा भूमंडल जुटे, दृष्टि अद्‌भुत पाई।
कितनी पीड़ा थी संस्कृति की, यह कोई जान नहीं सकता,
गहराई सागर सी असीम, कोई अनुमान नहीं सकता।
हे राष्ट्रवाद की ऋचा मुखर, संकल्प सिद्ध तुम थे निर्भय,
ओ चिर अतृप्त चिर विद्रोही..........।।

तुम मातृशक्ति के पूजक थे, निज संस्कृति के आराधक थे।
मानव के सही उपासक थे, शुचि विश्व-भाव के साधक थे।
तुम दलितों के उत्थान हेतु, मानवी-श्लोक के वाचक थे।
लेकिन अनीति की झंझा के, हे वज्र-वक्ष तुम बाधक थे।
हे चिर विराट! हम वामन हैं, कैसे अर्चना तुम्हारी हो,
इस राजनगर के मरुथल की, तुम सौरभमय फुलवारी हो।
इस समय-वालुका पर तुमने, पद चिह्न किए शाश्वत अंकित।
उन पर ही चल कर पा सकता, यह राष्ट्र लक्ष्य अपना वांछित।
युग अम्बर के उदयाचल से, फिर से प्रकटो हे युगाधार।
हे आदर्शों के स्वर्णमेरु ! हे जन मंगल के स्वर्ण वलय।।
ओ चिर अतृप्त चिर विद्रोही..........।। ●

जब भी मैंने तुमको देखा

जब भी तुमको किसी भीड़ में मैंने देखा
ऐसा लगा कि सचमुच अद्‌भुत विधि का लेखा

ऐसा लगा कि कोई गर्वित नर शार्दूल खड़ा है
वृषभ कंध आयत उर पथ पर पर्वतराज अड़ा है
या तारागण मध्य भानु को बरबस गया जड़ा है
और तुम्हारे सम्मोहन से तम बेहोश पड़ा है

शीश झुक गया अनायास ही
मिटी मान्यताएँ सब सतही।

जब भी तुमको हहराते झंझा में देखा
ऐसा लगा खिंची कोई है लक्ष्मण रेखा
ऐसा लगा कि प्रलयकाल का महाज्वाल मचला है
या उफनाते महासिंधु पर बड़वानल उबला है
शक्ति ज्योति के रश्मि मुकुट पर नव आलोक जला है
या कि रुद्र का नयन तीसरा, फिर से आज खुला है

शीश झुक गया अनायास ही
मिटी मान्यताएँ सब सतही।

जब भी तुमको जलते अंगारों में देखा
ऐसा लगा कि उलट गया संसृति का लेखा
ऐसा लगा कि म्रियमाणों पर देवामृत का पात हो गया
ऐसा लगा कि वृन्त पर बल भर वज्राघात हो गया
ऐसा लगा कि किसी मानवता से क्रूर दनुज दल मात हो गया
और ज्योति के उदयाचल पर युग का नवल प्रभात हो गया

शीश झुक गया अनायास ही
मिटी मान्यताएँ सव सतही।

जव भी तुमको इतिहासों में मैंने देखा
ऐसा लगा कि कटु यथार्थ ने रूप निरेखा
लगा आर्य संस्कृति को फिर से नव आह्वान मिला है
व्यास आदि कवि तुलसी को अभिनव अभिमान मिला है
या कवीर की फक्कड़ता को नव प्रतिमान मिला है
और काव्य की हर धड़कन को नव उपमान मिला है

शीश झुक गया अनायास ही
मिटी मान्यताएँ सव सतही।

जव भी तुमको गहन अश्रु सागर में देखा
ऐसा लगा कि संवेदन ने खुद को ही अवरेखा
ऐसा लगा प्रथम कवि के ही संवेदन की अरुणा
हुई प्रवाहित युगातीत वन अनामिका की वरुणा
दुख ही कथा बनी जीवन की विधि की विषम वंचना
और तुम्हारी पीर वन गई अनवोली युग-करुणा

शीश झुक गया अनायास ही
मिटी मान्यताएँ सव सतही।

जव भी तुमको सुकवि गढ़ाकोला* में देखा
ऐसा लगा कि किसी मल्ल को मैंने देखा
पुलक उठी चौपाल पुनः 'चतुरी चमार' की
गूँजी वोली फाग संग रसिया धमार की
खिली 'जुही की कली' अजाने गुप्त प्यार की
तापित को सौगात मिली शीतल बयार की

शीश झुक गया अनायास ही
मिटी मान्यताएँ सव सतही। ●

---

*गढ़ाकोला (उन्नाव) - निरालाजी की पितृभूमि

पूजन के ये पावन प्रसून

हे सतत सत्य के अन्वेपी, जीवन में रहे न रंच भ्रान्त।
रघुवंश शिरोमणि के स्वरूप, क्षीरधि सागर से सदा शांत।
जैसे आए तुम इस जग में, वैसे ही अमल रहे प्रतिक्षण—
तुमसे बढ़कर सर्वदा रहा प्रिय नाम तुम्हारा विष्णुकांत।।

जैसी चादर वेदाग मिली, वैसी ही तुमने दी उतार।
दुग्धोज्ज्वल जीवन सदा रहा, हे यशी! मनीपी! युगाधार।
तुमको पाकर हो गए धन्य, साहित्य, कला के मापदण्ड।
हे सारस्वत व्रत के साधक, साधना रही ध्रुव सी अखण्ड।।

नित राम - राम जपते-जपते हो गए स्वयं ही राम रूप।
सव विधि तुम अपरम्पार रहे उपमान स्वयं के तुम अनूप।
तुमसे वौनी हर ऊँचाई ऋपि-गंध संवरित हे विराट।
पीकर कुण्ठा का गरल बाँटते सुधा रहे वन व्यालराट।।

जव तक जीवन में आस्था है नगराज सदृश विश्वास प्रवल।
जव तक कुण्ठा से लड़ने की संकल्प-शक्ति उद्दाम सवल।
जव तक भारत सँग भारति के चरणों में है अनुरक्ति भाव।
जव तक है भक्ति साधना सँग चिर शक्ति साधना का प्रभाव।।

जव तक अशुभों से लड़ने का संकल्पपूर्ण होगा नारा।
तव तक होगी नित नीरा सी हे व्रती ! तुम्हारी यश-धारा।
हे गीता के नवव्याख्याता ! हे शव्द-शक्ति के आराधक।
हे सात्विकता की परिभापा ! हे सारस्वत-व्रत के साधक।।

इस भरतभूमि की प्रज्ञा के सर्वदा रहे पावन प्रतीक।
तुमने जो स्वर्णिम पंथ रचा वर दो हम सव वह गहें लीक।
निन्दा संस्तुति से दूर रहे हे महा मनस्वी चिर प्रशांत।
पूजन के ये पावन प्रसून स्वीकार करो हे विष्णुकान्त।। ●

संन्यासी योद्धा स्वामी विवेकानन्द के प्रति

प्रज्ञा के अनुपम आलोक

ओ वरेण्य संन्यासी योद्धा ! ओ युग के पावन आदर्श।
तुमसे पूजित हुआ विश्व में अपना प्यारा भारतवर्ष।
अव्यय धड़कन बने राष्ट्र की, माँ भारति के गौरव श्लोक।
युग-वन्दन स्वीकार करो अब प्रज्ञा के अनुपम आलोक।।

तुम्हें कौन सा सम्बोधन दूँ हे विपपायी ! हे अवतारी !
रहे लुटाते सुधा विश्व को, हे परिव्राजक ! हे व्रतधारी !
धर्म सभा में जब तुम बोले, बन्द हुआ सारा दादुर स्वर।
नगर शिकागो धन्य हो गया उद्वेलित था मिशिगन[1] अंतर।।

१. शिकागो के पास विशाल झील

भ्रम में जो जीते थे अब तक, उनका हर भ्रम दूर हो गया।
कल्पित मायावी रचना का, दर्प समूचा चूर हो गया।
तुममें ही भारत सावित्री ने ली थी ऐसी अँगड़ाई।
प्रभावती भारती चेतना ने पायी मोहक तरुणाई।।

भारत क्या है, क्या इसकी है, अविनश्वर संस्कृति की धारा।
नवल विवेकमयी प्रज्ञा से, तुमने इसको सदा सँवारा।
भारत का वेदान्त ज्ञान ही, सच्चा है जीवन का दर्शन।
ओ नवयुग-गीता के गायक, कृष्ण सरीखा था आकर्षण।।

शिवं रूप था भव्य तुम्हारा, शिवं रूप थे वाणी के स्वर।
तप्त जगत में बन कर आए, सावन-भादो के तुम जलधर।
युग के घोर तमस पर खींची, तुमने बल भर ज्योतिर्रेखा।
ज्योति विहग ! प्रकाश आवाहक, तुम थे एक प्रभामय लेखा।।

अव्याहत गति लिए तुम्हारा, बढ़ा धर्म-रथ मानव पथ पर।
तुम आरूढ़ रहे जीवन भर, अपने ही विवेक के रथ पर।
दीन दुखी अज्ञानी जग के, हो नवीन आराध्य हमारे।
इनकी पूजा ही प्रभु-पूजा, लगे रहें हम साँझ-सकारे।।

व्रती ! तुम्हारे संग हो गई राजस्थानी धरा सुहावन।
नगर खेतड़ी धन्य हो गया युग में तीर्थराज सा पावन।।
पर यह क्या ? तुम चले गए यों, डूबे दुपहर में ज्यों सूरज।
खोज रहे भारतवासी फिर, यशी ! तुम्हारी ही पावन रज।।

देशवासियों उठो जगो इस जगती का उत्थान करो।
फिर से विश्व गुरु के पद पर शोभित हिन्दुस्थान करो।
यही तुम्हारा मूल मंत्र था यही तुम्हारा था युग नारा।
इससे ही हम पार करेंगे इस जग की दुर्गम भव धारा।। ●

नाम : डॉ० अरुण प्रकाश अवस्थी

जन्मस्थान : मौरावां, उन्नाव (उ० प्र०)

शिक्षा : एम. ए., पी-एच. डी., विद्यासागर (डी. लिट्.)।

रचनाएँ : रावीतट (खण्ड काव्य) पुरस्कृत, धर्म और अनुभूति, वंदनीया युगे-युगे, यह देश नहीं देवालय है, क्रांति का देवता (पुरस्कृत) (खण्ड काव्य), महाराणा का पत्र (पुरस्कृत) (खण्ड काव्य), अँसुवन जल सींचि-सींचि, सिन्धु-शार्दूल दाहिरसेन (उपन्यास), सबसे ऊपर कौन (उपन्यास), एक बिन्दु जो सिन्धु बन गया, राम चालीसा, महालक्ष्मी महिमा, हमारी अदृश्य शक्तियाँ, युगावतार भगवान परशुराम, राम-श्याम युगल शतक।

इसके अतिरिक्त ६ सम्पादित ग्रंथ; विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगभग ४५०० गीत - ग़ज़ल एवं कविताएँ; १५० निबन्ध तथा ४०० ऐतिहासिक कहानियाँ प्रकाशित।

विचारधारा : राष्ट्रीय एवं उदारवादी मानवता

सम्पर्क सूत्र : सी-ए ५/१०, देशबन्धु नगर, बागुईहाटी, कोलकाता-७०० ०५९

दूरभाष : २५७६ १५२२ *मो:* ०८०१३२५६५५७

स्थाई पता : इन्दप्रभा नगर, मौरावां, उन्नाव (उ० प्र०)

दूरभाष : (०५१४२) २५६०९१

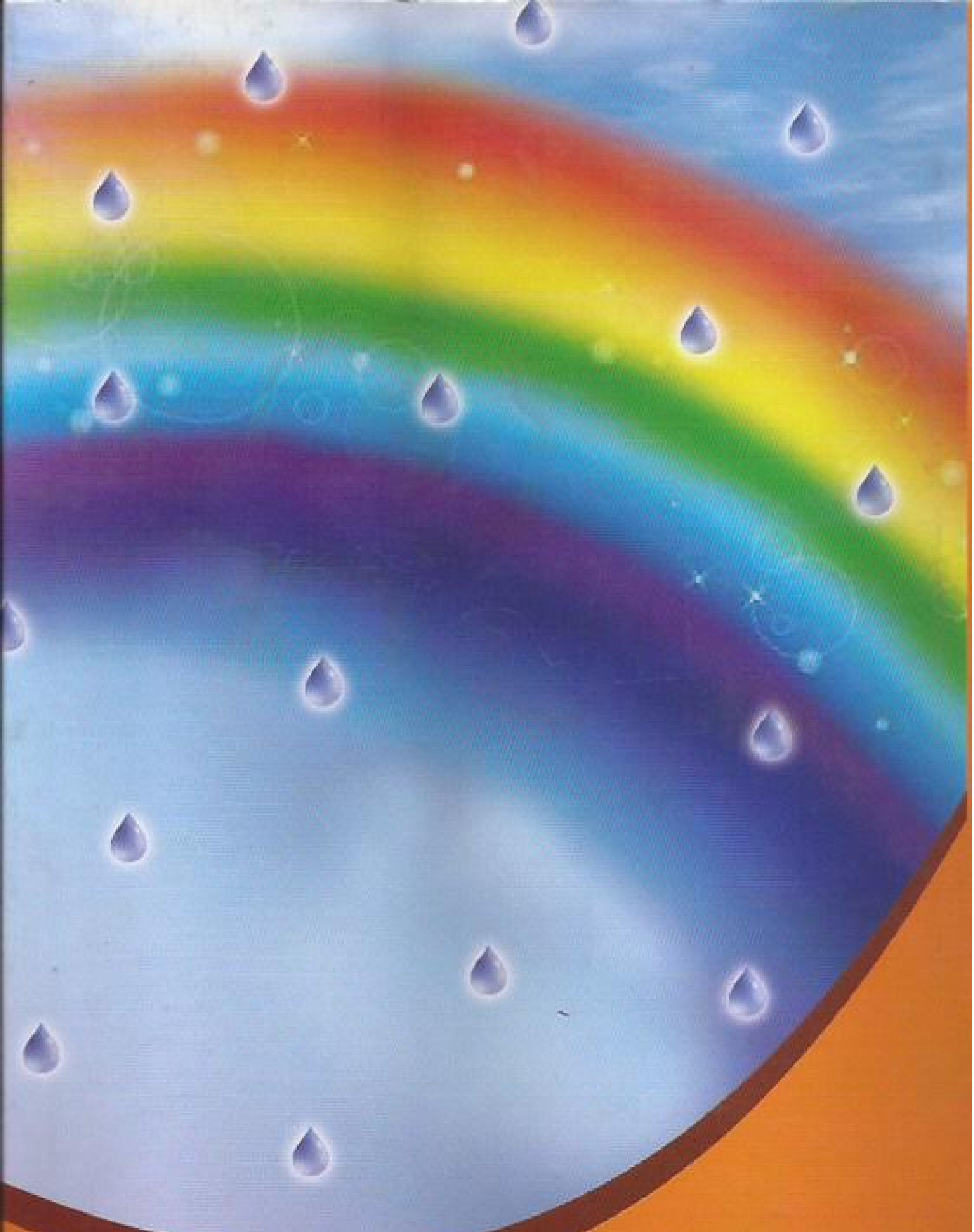

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय

कोलकाता